जिनागम पंथ ग्रंथमाला : ग्रंथांक– 10

श्रीमद् कुमुदचन्द्राचार्य कृत

कल्याण मंदिर विधान

कृतिकार :
भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज

जिनागम पंथ, प्रकाशन

ज्ञानावरण कर्म के आस्रव का कारण

.. शास्त्र विक्रय.. ज्ञानावरणस्यास्रवा: श्रुतात्स्याच्छ्रुतकेवली।

शास्त्र विक्रय ज्ञानावरण कर्म के आस्रव का कारण है तथा शास्त्रदान से श्रुतकेवली होता है ऐसा आगम वाक्य है।

जिनागम पंथ ग्रंथमाला से प्रकाशित श्रुत साहित्य का विक्रय नहीं किया जाता। सभी स्वाध्यायी जीवों के लिए नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाता है।

जिनागम पंथ ग्रंथमाला : ग्रंथांक–10

कृति : कल्याण मंदिर विधान

मंगल आशीर्वाद : प.पू. शुद्धोपयोगी संत, सूरिगच्छाचार्य श्री विरागसागर जी महामुनिराज

कृतिकार : प.पू. भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज

प्रकाशक : जिनागम पंथ ग्रंथमाला

संस्करण : प्रथम, 2022

पावन प्रसंग : स्वर्णिम विमर्शोत्सव रजत संयमोत्सव 2022-23

प्राप्ति स्थान :

जिनागम पंथ ग्रंथालय
छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मो. 9425146667

जिनागम पंथ ग्रंथालय
श्री महावीर दि. जैन मंदिर
श्रमणपुर, लखनादौन (म.प्र.)
मो. 9425146667

राष्ट्रीय विमर्श जागृति मंच
भिण्ड (म.प्र.)
मो. 9826217291

जिनागम पंथ ग्रंथालय
डॉ. विश्वजीत कोटिया
आगरा (उ.प्र.)
मो. 9412163166

जिनागम पंथ ग्रंथालय
अरिन्जय जैन
दिल्ली
मो. 9710099002

मुद्रक :
ज्योति ग्राफिक्स, जयपुर
मो. 8290526049

ग्रंथ भेंटकर्ता परिवार

श्रीमान् नरेन्द्र कुमार, नितिन कुमार जैन, देवेन्द्र नगर
श्रीमती शशि देवी जैन, फतहेपुर

परिचय की वीथिकाओं में

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज

लौकिक यात्रा

पूर्व नाम	:	श्री राकेश कुमार जैन
पिता	:	पं. श्री सनत कुमार जैन (दो प्रतिमाधारी, समाधिस्थ)
माता	:	श्रीमती भगवती जैन (आपके ही कर कमलों से दीक्षित एवं समाधिस्थ पू. आर्यिका विहान्तश्री माताजी)
जन्म स्थान	:	जतारा, जिला-टीकमगढ़ (म.प्र.)
जन्म तिथि	:	मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी सं. 2030
जन्म दिनांक	:	15 नवम्बर, 1973 दिन : गुरुवार
शिक्षा	:	बी.एस.सी. (बायलॉजी)
भ्राता	:	दो (अग्रज राजेश जैन, अनुज चक्रेश जैन)
भगिनी	:	दो (अग्रजा-श्रीमती कमला जैन, अनुजा-बा.ब्र. महिमा दीदी (संघस्थ)
विवाह	:	बाल ब्रह्मचारी
खेल	:	बैडमिंटन, शतरंज (विशेषता—दोनों खेल जिनसे सीखे उन्हीं के साथ फाईनल खेलते हुए चैंपियन कप विजेता)
सामाजिक सेवा	:	मंत्री— श्री दिगम्बर जैन नवयुवक संघ, जतारा
रुचि	:	अध्ययन, संगीत, पेंटिंग
सांस्कृतिक रुचि	:	अनेक धार्मिक, सामाजिक नाट्य मंचन
करुणा भाव	:	बचपन में एक गरीब अंधे भिखारी को अक्सर पैसे दान देना।

परमार्थ यात्रा

आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज के प्रथम बार जतारा नगर में आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं त्रयगजरथ महोत्सव में समाज की ओर से निवेदन के अवसर पर दर्शन हुये। आचार्यश्री की वात्सल्यता ने अत्यंत प्रभावित किया। (सन्-1995, स्थान-मोराजी सागर, म.प्र.)

त्याग के संस्कार : आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज की जतारा नगर में वैयावृत्ति के समय आजीवन आलू, प्याज एवं रात्रि भोजन के त्याग से गृह त्याग की भावना।

ब्रह्मचर्य व्रत : आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज ससंघ का विहार कराते हुए सिद्धक्षेत्र श्री अहार जी में भगवान् शान्तिनाथ की चरणछाया में फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी, सोमवार संवत् 2051, दिनांक 27 फरवरी 1995 को आचार्यश्री से दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया।

सामायिक प्रतिमा : आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज से पार्श्वनाथ मोक्ष सप्तमी के अवसर पर सामायिक प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। स्थान- क्षेत्रपाल जी ललितपुर (उ.प्र.), दिनांक 3 अगस्त 1995, गुरुवार।

ऐलक दीक्षा: फाल्गुन शुक्ला पंचमी, शुक्रवार, संवत् 2052, 23 फरवरी 1996 को देवेन्द्रनगर (पन्ना) में तपकल्याणक के दिन आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज से ऐलक दीक्षा ग्रहण की और नाम पाया ऐलक विमर्शसागर जी।

मुनि दीक्षा : पौष कृष्णा 11, संवत् 2055, सोमवार दिनांक 14 दिसम्बर 1998 को अतिशय क्षेत्र बरासो (भिण्ड) में आचार्यश्री विरागसागरजी से मुनिदीक्षा ग्रहण की और मुनि विमर्शसागर नाम पाया।

आचार्य पद घोषित: आचार्यश्री विरागसागरजी ने 13 फरवरी 2005, रविवार को कुन्थुगिरी में गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी सहित 14 आचार्य एवं 200 पिच्छिओं के मध्य आचार्य पद घोषित किया।

आचार्य पद संस्कार : मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी सं. 2067, रविवार, दिनांक 12 दिसम्बर 2010 को बांसवाड़ा (राजस्थान) में आचार्यश्री विरागसागरजी ने आचार्य पद के संस्कार किये और नाम दिया आचार्य विमर्शसागर जी।

शान्ति भक्ति की सिद्धि : 25 दिसम्बर 2015, सिद्धक्षेत्र अहार जी में भगवान् श्री शान्तिनाथ स्वामी के अतिशयकारी पादमूल में, संघस्थ बा.ब्र. विशु दीदी की असाध्य बीमारी (रोग) से करुणान्वित हो पूज्य गुरुदेव ने जब लगभग 1400 वर्ष प्राचीन आचार्य पूज्यपाद स्वामी रचित शान्त्यष्टक का भावपूर्वक पाठ किया तो देखते ही देखते क्षण मात्र में दीदी असाध्य रोग से मुक्त हो गईं। तब क्षेत्र के यक्ष-यक्षणियों द्वारा गुरुदेव की महापूजा की गई और सूचित किया कि आपको अपनी निर्मल साधना से इस पंचमकाल में दुर्लभतम् शान्ति भक्ति की सहज ही सिद्धि प्राप्त हुई है। साथ ही पूज्य गुरुदेव को **'भावलिंगी संत', 'अहार जी के छोटे बाबा', 'शान्तिप्रभु के लघुनंदन'** आदि संज्ञायें प्रदान कीं।

शब्दालंकार : रत्नत्रय के ऊर्जस्वी और तेजस्वी अलंकारों से जिनकी आत्मा का एक-एक प्रदेश अलंकृत है। सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् की दिव्य रश्मियों से आलोकित पूज्य गुरुवर विमर्शसागर जी महामुनिराज का विराट व्यक्तित्व किन्हीं शब्दालंकारों का मोहताज नहीं है। फिर भी जगह-जगह की धर्मप्राण-समाजों, ऊर्जस्वी संगठनों एवं यशस्वी व्यक्तियों ने नाना अवसरों पर अपने मनोभावों को शब्दों में समेट कर गुरुचरणों में कई शब्दालंकार प्रस्तुत किये हैं और अपना सौभाग्य माना है।

वात्सल्य शिरोमणि—संत के जीवन का सबसे प्रभावी गुण होता है उसका अकृत्रिम वात्सल्य भाव, पूज्य गुरुवर को यह वात्सल्य की अमूल्य सम्पदा, गुरु परम्परा से विरासत में ही प्राप्त हुई है, वर्षायोग 2008 के उपरान्त उत्तरप्रदेश के आगरा नगर में पंचकल्याणक के अवसर पर आगरा समाज ने आपके वात्सल्य से प्रभावित होकर आपको **''वात्सल्य शिरोमणि''** के अलंकार से विभूषित किया।

श्रमण गौरव—प.पू. भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज की अनुशासन के सुडौल साँचे में ढली निर्दोष श्रमण चर्या वर्तमान में श्रमण जगत को गौरवान्वित करती है, पूज्य श्री की आगमानुसारी चर्या से प्रभावित होकर एटा-2009 वर्षायोग में शाकाहार परिषद ने आपको **''श्रमण गौरव''** की उपाधि से अलंकृत किया और अपना सौभाग्य बढ़ाया।

वात्सल्य सिन्धु—वात्सल्य और करुणा के दो पावन तटों के बीच प्रवाहित गुरुवर की जीवन मंदाकिनी जनमानस की सतह पर बिखरी घृणा, बैर, कटुता की कलुषता को सहज ही धो डालती है। पूज्यश्री के इसी गुण आकर्षण से अनुग्रहीत हो, एटा वर्षायोग-2009 में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के अवसर पर राजेश जैन गीतकार आदि कवि समूह ने गुरुवर को **''वात्सल्य सिन्धु''** का भाव वंदन अर्पित कर सौभाग्य माना।

आचार्य पुंगव—संतवाद, पंथवाद, जातिवाद और ग्रंथवाद की वैचारिक संकीर्णताओं से असम्पृक्त पूज्य श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज की सिर्फ चर्या ही अनुकरणीय नहीं, अपितु उनका चतुरानुयोग का निर्मल ज्ञान भी ज्येष्ठ है। ऐसे ज्ञान और चर्या में श्रेष्ठ संत के महिमावंत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर पूज्य गुरुदेव की गृहनगरी जतारा जैन समाज ने पंचकल्याणक 2012 के अवसर पर आपको **''आचार्य पुंगव''** की उपाधि से भूषित कर अपना मान बढ़ाया।

राष्ट्रयोगी—पूज्य गुरुवर का **''वैचारिक वैभव''** सिर्फ जैनों तक सीमित नहीं अपितु हर जाति का व्यक्ति उसे अपनी विरासत मानता है। अत: बिजयनगर (राज.) वर्षायोग-2012 में राष्ट्रवादी संस्था भारत विकास परिषद द्वारा आयोजित **''दिव्य संस्कार प्रवचन माला''** में आपके राष्ट्रोन्नति से समृद्ध उपदेशों को सुनकर आपको **''राष्ट्रयोगी''** का अलंकार समर्पित किया गया।

सर्वोदयी संत—पूज्य आचार्यश्री की निर्भीक शैली जनमानस को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है तभी तो पूज्यवर के प्रवचनों में जैनों के साथ-साथ अजैन भी देशना को सुनकर आनंदित होते हैं, आपके उपदेशों में प्राणीमात्र के उदय की दिव्य चमक नजर आती है, तभी तो बिजयनगर (राज.) दिगम्बर जैन समाज ने 2012 वर्षायोग में आपको **''सर्वोदयी संत''** की उपाधि से नवाजा।

प्रज्ञामनीषी—श्रुताराधना के अनुपम आराधक, जिनेन्द्रवाणी के गहन प्रचारक, वाणी और कलम के अनूठे जादूगर पूज्यश्री की तीक्ष्ण प्रज्ञा और निर्मल ज्ञान से प्रभावित होकर, अखिल भारतीय आध्यात्मिक कवि सम्मेलन बिजयनगर (राज.)- 2012 में कविगण एवं भारत विकास परिषद द्वारा आपको **''प्रज्ञामनीषी''** की उपाधि से विभूषित किया गया।

राष्ट्रहितैषी—उत्तरप्रदेश के एटा नगर में स्वामी विवेकानन्द की 150वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर विश्व हिन्दू परिषद के तत्त्वावधान में आयोजित अखिल भारतीय युवा सम्मेलन में पूज्य गुरुदेव के राष्ट्रहित में समर्पित देशोन्नति परक अमूल्य चिंतन से प्रभावित हो विश्व हिन्दू परिषद द्वारा सन् 2013 में आपको **''राष्ट्रहितैषी''** अलंकरण से अलंकृत किया गया।

आदर्श महाकवि—सम्प्रतिकाल में कुरल शैली का सैकड़ों विषयों को हृदयंगम करनेवाला अमर महाकाव्य ''जीवन है पानी की बूँद'' के शब्दशिल्पी, भजन, ग़ज़ल, मुक्तक, कविता, नई कविता, पद्यानुवाद, सवैया आदि अनेक जटिल विधाओं पर साधिकार कलम चलानेवाले परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज के अपूर्व काव्यात्मक अवदान से प्रेरित हो, 14 नवम्बर 2016 को अखिल भारतीय आध्यात्मिक कवि सम्मेलन में, देश के ख्यातिलब्ध मूर्धन्य कवियों ने सुरेश 'पराग' के नेतृत्व में एवं पं. संकेत जी के मार्गदर्शन में सकल जैन समाज देवेन्द्रनगर की गरिमामयी अनुमोदना के संग पूज्यश्री को **''आदर्श महाकवि''** का अलंकरण भेंट कर निज सौभाग्य वर्धन किया।

चारित्र रथी-आत्मप्रदेशों में सच्चे भावलिंग की प्रतिष्ठा कर, आत्मरति और परविरति के साथ चारित्र रथ पर सवार हो पूज्य गुरुदेव आत्मोत्थान के सुपथ पर अबाध रीति से वर्धमान हैं। आपकी इस आत्मोन्नयन की निष्पंक चारित्र साधना से प्रभावित हो देश के वरिष्ठ साहित्यकार श्री सुरेश 'सरल' जी ने बिजयनगर चातुर्मास 2012 में आपको **''चारित्र रथी''** का अलंकरण भेंट कर स्व गौरववर्धन किया।

जिनागम पंथ प्रवर्तक -वर्तमान में पंथवाद, संतवाद और जातिवाद के नाम पर बिखरती दिगम्बर जैन समाज में अनादि अनिधन **''जिनागम पंथ''** का उद्घोष कर पूज्य गुरुदेव ने जैन एकता के लिये एक महनीय कार्य किया है। पूज्य गुरुदेव के इस **''जैन यूनिटी मिशन''** से प्रभावित हो सन् 2020 में श्री कल्पद्रुम महामण्डल विधान एवं गजरथ महोत्सव के सुप्रसंग पर बा.ब्र. ऋषभ भैया (नागपुर) के मार्गदर्शन में सकल दिगम्बर जैन समाज, बाराबंकी ने आपको **''जिनागम पंथ प्रवर्तक''** का अलंकरण भेंट कर आपके इस अभिनंद्य प्रयास की अभ्यर्थना की।

राष्ट्रगौरव-परम पूज्य भावलिंगी संत राष्ट्रयोगी श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागर जी महामुनिराज का अनुत्तम वैदुष्य जहाँ एक ओर धर्मनीति की प्रतिष्ठा करता है वहीं दूसरी ओर आपका क्रान्तिनिष्ठ मौलिक चिंतन, राजनीति, न्याय-नीति, मानव सेवा, शाकाहार, गौरक्षा, लोकतंत्र, पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों के प्रति जन जागरण कर संपूर्ण देश के लिये गौरव का विषय बन पड़ा है। पूज्य गुरूदेव के दिव्यावदानों से आज समुचा देश गौरवान्वित है। इसीलिये महमूदाबाद चातुर्मास 2021 में सम्पूर्ण अवध प्रान्त की जैन समाज की गरिमामयी उपस्थिति में कला और साहित्य की अखिल भारतीय संस्था एवं **''राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ''** के अनुसांगिक संगठन **''संस्कार भारती''** की ओर से माननीय श्री गिरीशचन्द्र मिश्र, राज्यमंत्री, उत्तरप्रदेश शासन द्वारा पूज्य गुरुदेव को **''राष्ट्रगौरव''** का अलंकरण भेंट किया गया।

साहित्यिक यात्रा

भावलिंग संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज सौम्यवदन, गौरवर्ण, शुभ संस्थान, चौड़ा ललाट, दमकता मुखमण्डल, प्रशस्त मुद्रा, मधुर मुस्कान के धारी हैं, ऐसे ही आचार्यश्री की लेखनी भी जनमानस के हृदय को छूने वाली है। आचार्यश्री ने अनेक विषयों पर कलम चलाते हुए साहित्य सृजन किया है।

काव्य पाठ संग्रह –

1. हे वन्दनीय गुरुवर (काव्य)
2. मानतुंग के मोती
3. विमर्शाञ्जलि (पूजा पाठ संग्रह)
4. गीताञ्जलि (भजन)
5. विरागाञ्जलि (श्रमण पाठ संग्रह)
6. जीवन है पानी की बूँद (भाग-1)
7. जीवन है पानी की बूँद (भाग-2)
8. जीवन है पानी की बूँद (समग्र)
9. जीवन चलती हुई घड़ी (काव्य)
10. खूबसूरत लाइनें (काव्य)
11. समर्पण के स्वर (काव्य)
12. आईना (काव्य)
13. सोचता हूँ कभी-कभी (काव्य)
14. मेरा प्रेम स्वीकार करो (काव्य)
15. वाह क्या खूब कही (काव्य)
16. कर लो गुरु गुणगान (काव्य)
17. आओ सीखें जिनस्तोत्र
18. चटपटे प्रश्न-स्वादिष्ट उत्तर (पहेली)

प्रवचन साहित्य :

1. रयणोदय (प्रथम भाग)
2. रयणोदय (द्वितीय भाग)
3. रयणोदय (तृतीय भाग)
4. रयणोदय (चतुर्थ भाग)
5. रयणोदय (पंचम भाग)
6. योगोदय (प्रथम भाग)
7. योगोदय (द्वितीय भाग)
8. उपासकोदय (प्रथम भाग)
9. उपासकोदय (द्वितीय भाग)
10. देशव्रतोदय
11. साम्योदय (प्रथम भाग)
12. साम्योदय (द्वितीय भाग)

13. रत्नोदय (प्रथम भाग)
14. ज्ञानोदय
15. इष्टोदय (प्रथम भाग)
16. इष्टोदय (द्वितीय भाग)
17. गूँगी चीख
18. भरत जी घर में वैरागी
19. शब्द शब्द अमृत
20. शंका की एक रात

प्रेरक साहित्य :

1. जनवरी विमर्श
2. जैन श्रावक और दीपावली पर्व
3. विमर्श हस्ताक्षर

ग़ज़ल संग्रह :

ज़ाहिद की ग़ज़लें

विधान :

1. आचार्य विरागसागर विधान
2. एकीभाव विधान
3. श्री भक्तामर विधान (3)
4. विषापहार विधान
5. श्री कल्याण मंदिर विधान
6. श्री श्रमण उपसर्ग निवारण विधान

चालीसा : गणधर चालीसा

टीका :

योगसार प्राभृत ग्रंथ पर :

1. अप्पोदया (प्राकृत टीका)
2. आत्मोदया (हिन्दी टीका)

महाकाव्य :

''जीवन है पानी की बूँद'' (महाकाव्य)– पूज्य गुरुदेव इस अमर महाकाव्य के मूल रचयिता है। पूज्यश्री के इस बहुचर्चित महाकाव्य पर अनेकों साधु-भगवंत, विद्वान् एवं संगीतकार बहुसंख्या में नवीन छंदों का सृजन कर अपनी काव्य प्रतिभा को धन्य कर रहे हैं, जो इस महाकाव्य की लोकप्रियता का अनुपम उदाहरण है।

लिपि : विमर्श लिपि, विमर्श अंक लिपि

भाषा : विमर्श एम्बिसा

पद्यानुवाद :

1. सुप्रभात स्तोत्र
2. महावीराष्टक स्तोत्र
3. लघु स्वयंभू स्तोत्र
4. भक्तामर स्तोत्र (त्रय पद्यानुवाद)
5. गोम्मटेस स्तुति
6. द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ)
7. विषापहार स्तोत्र
8. एकीभाव स्तोत्र
9. पञ्चमहागुरुभक्ति
10. तीर्थंकर जिनस्तुति
11. गणधरवलय स्तोत्र
12. कल्याणमंदिर स्तोत्र
13. परमानंद स्तोत्र
14. रयणसार
15. योगसार
16. उपासक संस्कार
17. देशव्रतोद्योतन
18. ज्ञानांकुश

बहुचर्चित भजन :

1. जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य)
2. कर तू प्रभु का ध्यान
3. ऋण मुक्ति का वर दीजिये
4. शान्तिनाथ कीर्तन
5. देश और धर्म के लिये जिओ
6. माँ

प्रेरणा से प्रकाशन :

1. सिर्फ दो प्रवचन (आचार्य विरागसागरजी, सम्पादक-आचार्य विमर्शसागर जी)
2. हिन्दी साहित्य की सन्त परम्परा में आचार्य विरागसागर के कृतित्त्व का अनुशीलन (डॉ. लोकेश खरे)
3. समसामयिक – आचार विद्वत् संगोष्ठी (कोटा)
4. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय – राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (शिवपुरी)
5. प्रज्ञाशील महामनीषी

प्रेरणा से स्थापित :

- **आचार्य विरागसागर ग्रंथमाला**
- **जिनागम पंथ ग्रंथमाला**

उद्देश्य : मूल जिनागम का संरक्षण, प्रकाशन
प्रचार-प्रसार एवं लोकोपयोगी धार्मिक, नैतिक साहित्य का निर्माण, प्रकाशन

विद्वत् संगोष्ठी :

1. समसामयिक – आचार विद्वत् संगोष्ठी (कोटा-2006)
2. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय अनुशीलन राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (शिवपुरी-2007)
3. जैन दर्शन में कर्म सिद्धान्त राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (बड़ौत-2014)
4. जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य) राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (बड़ा मलहरा-2016)
5. जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य) राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (देवेन्द्रनगर-2016)
6. समसामयिक राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी एवं जैन पत्रकार, संपादक सम्मेलन (जबलपुर-2017)
7. आचार्यश्री विमर्शसागरजी कृत 'रयणोदय' पर राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी एवं जैन पत्रकार, संपादक सम्मेलन (छिंदवाड़ा -2018)।
8. आचार्यश्री विमर्शसागरजी कृत 'ज़ाहिद की ग़ज़लें' कृति पर साहित्यकार सम्मेलन (छिंदवाड़ा-2018)
9. आचार्यश्री विमर्शसागर जी कृत 'रयणोदय' पर राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (दुर्ग-2019)।

आनन्द महोत्सव (पूजन प्रशिक्षण शिविर) – आचार्यश्री के सानिध्य एवं निर्देशन में आयोजित 'आनन्द महोत्सव' एक ऐसी प्रयोगशाला है जिसमें जैनधर्म के संस्कार एवं शिक्षा का प्रयोग करना सिखाया जाता है। यदि चेतनतीर्थ स्वरूप उपासक संस्कारित नहीं, तो अचेतनतीर्थ स्वरूप जिनमंदिरों का महत्व नहीं जाना जा सकता। आचार्यश्री जब अपने मधुर कंठ से शिविर का यथायोग्य संचालन करते हैं तब हर श्रावक भक्ति में ऐसा लीन हो जाता है कि 4-5 घंटे का भी पता नहीं चलता। आचार्यश्री के निर्देशन में आयोजित इस शिविर के माध्यम से आज हजारों लोग जैनत्व के संस्कारों से जुड़े हैं। अभी तक 24 पूजन शिविर आयोजित हो चुके हैं–

1. महरौनी (उ.प्र.)
2. वरायठा (म.प्र.)
3. अंकुर कॉलोनी, सागर (म.प्र.)
4. सतना (म.प्र.)
5. अशोकनगर (म.प्र.)
6. रामगंजमण्डी (राज.)
7. भानपुरा (म.प्र.)
8. सिंगोली (म.प्र.)
9. कोटा (राज.)
10. शिवपुरी (म.प्र.)
11. आगरा (उ.प्र.)
12. एटा (उ.प्र.)

13. डूंगरपुर (राज.)
14. अशोकनगर (म.प्र.)
15. बिजयनगर (राज.)
16. भिण्ड (म.प्र.)
17. बड़ौत (उ.प्र.)
18. टीकमगढ़ (म.प्र.)
19. देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
20. जबलपुर (म.प्र.)
21. लखनादौन (म.प्र.)
22. छिंदवाड़ा (म.प्र.)
23. दुर्ग (छत्तीसगढ़)
24. फतेहपुर (उ.प्र.)

पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव :

1. नेमिनाथ पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव-2002 (रजवांस, सागर, म.प्र.)
2. आदिनाथ पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव-2003 (महरौनी, ललितपुर, उ.प्र.)
3. आदिनाथ पंचकल्याणक, रथ महोत्सव-2004 (बूँदी, राज.)
4. आदिनाथ पंचकल्याणक, गजरथ महोत्सव-2007 (रामगंजमण्डी, कोटा ,राज.)
5. पार्श्वनाथ पंचकल्याणक, रथोत्सव-2007 (कोटा, राज.)
6. आदिनाथ पंचकल्याणक, गजरथ महोत्सव-2008 (शिवपुरी, म.प्र.)
7. आदिनाथ पंचकल्याणक, गजरथ महोत्सव-2009 (आगरा, उ.प्र.)
8. आदिनाथ पंचकल्याणक, गजरथ महोत्सव-2010 (एटा, उ.प्र.)
9. आदिनाथ पंचकल्याणक, त्रय गजरथ महोत्सव-2012 (जतारा, म.प्र.)
10. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव-2013 (तीर्थधाम आदीश्वरम् चंदेरी, म.प्र.)
11. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, त्रय गजरथ महोत्सव-2015 (पृथ्वीपुर, म.प्र.)
12. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, गजरथ महोत्सव-2015 (टीकमगढ़, म.प्र.)
13. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, त्रय गजरथ महोत्सव-2015 (बैरवार, जतारा, म.प्र.)
14. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, गजरथ महोत्सव-2018 (धनौरा, म.प्र.)
15. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, रथ महोत्सव-2021 (महमूदाबाद उ.प्र.)

चातुर्मास :

1. मढ़ियाजी जबलपुर (म.प्र.) – 1996
2. भिण्ड (म.प्र.) – 1997
3. भिण्ड (म.प्र.) – 1998
4. भिण्ड (म.प्र.) – 1999
5. महरौनी (उ.प्र.) – 2000
6. अंकुर कॉलोनी (सागर, म.प्र.) – 2001
7. सतना (म.प्र.) – 2002
8. अशोकनगर (म.प्र.) – 2003
9. रामगंजमण्डी (राज.) – 2004
10. सिंगोली (म.प्र.) – 2005
11. कोटा (राज.) – 2006
12. शिवपुरी (म.प्र.) – 2007
13. आगरा (उ.प्र.) – 2008
14. एटा (उ.प्र.) – 2009
15. डूंगरपुर (राज.) – 2010

16. अशोकनगर (म.प्र.) — 2011
17. बिजयनगर (राज.) — 2012
18. भिण्ड (म.प्र.) — 2013
19. बड़ौत (उ.प्र.) — 2014
20. टीकमगढ़ (म.प्र.) — 2015
21. देवेन्द्रनगर (म.प्र.) — 2016
22. जबलपुर (म.प्र.) — 2017
23. छिंदवाड़ा (म.प्र.) — 2018
24. दुर्ग (छत्तीसगढ़) — 2019
25. बाराबंकी (उ.प्र.) — 2020
26. महमूदाबाद (उ.प्र.) — 2021

वर्तमान संत संस्था में आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज एक ऐसे श्रेष्ठ संत हैं जिनके पास ज्ञान संस्कार की चर्या एवं चर्चा देखने-सुनने को मिलती है। कम बोलना लेकिन काम का बोलना आचार्यश्री की अपनी विशिष्ट शैली है। प्रवचनों में सकारात्मक चिंतन को परोसने वाले हित-मित प्रियभाषी, ''जिनागम पंथ प्रवर्तक'' आचार्यश्री पंथवाद-संतवाद-जातिवाद की भी खूब खबर लेते हैं। सच्चे संतत्व को प्रकाशित करनेवाले आचार्यश्री कहते हैं, पंथ-संत-जातिवाद को बढ़ावा देनेवाले श्रमण एवं श्रावक जिनधर्म के विनाशक होंगे। आचार्यों की अपनी-अपनी आचार परम्परा से श्रावक साधुओं के प्रति अश्रद्धानी होंगे, साथ ही सामाजिक समरसता, एकता नष्ट होगी। सचमुच आचार्यश्री का चिन्तन भविष्य की व्याख्या कर रहा है। आचार्यश्री का सरल-सौम्य व्यक्तित्त्व एवं पूर्वापर चिंतन ही आचार्यश्री की अलग पहचान है। ऐसे युगचेता संत के चरणों में हम बारम्बार नमन करते हैं।

-श्रमण विचिन्त्यसागर (संघस्थ)

पूज्य गुरुदेव से संबंधित अन्य साहित्य

जीवनी साहित्य :

1. राष्ट्रयोगी : लेखक – श्री सुरेश 'सरल' जबलपुर (म.प्र.)
2. आँगन की तुलसी : लेखक – प्राचार्य श्री निहाल चन्द जैन, बीना (म.प्र.)
3. जतारा का ध्रुवतारा : लेखक – श्री कपूर चंद जैन 'बंसल', जतारा (म.प्र.)
4. भावलिंगी संत (महाकाव्य) : लेखक – श्रमण विचिन्त्यसागर मुनि (संघस्थ)
5. विमर्श धाम (महाकाव्य) : लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक', देवेन्द्रनगर (म.प्र)
6. सर्वोदयी संत (महाकाव्य) : लेखक – श्री ज्ञानचन्द जैन 'दाऊ', सागर (म.प्र.)
7. विमर्श महाभाष्य : लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक', देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
8. विमर्श वाटिका : लेखक – श्री कपूर चंद जैन 'बंसल', जतारा (म.प्र.)
9. विमर्श भक्ति शतक : लेखिका – श्रीमती स्मृति जैन 'भारत', अशोकनगर (म.प्र.)
10. विमर्श शतक 1, 2 : लेखक – पं. ब्रजेन्द्र जैन, देवेन्द्र नगर (म.प्र.)
11. विमर्श वंदना : लेखक – कवि शशिकर 'खटका', राजस्थानी, बिजयनगर (राज.)
12. विमस्स महाकव्वं : लेखक-डॉ. उदयचन्द्र जैन उदयपुर (राज.)

विधान :

1. आचार्य विमर्शसागर विधान : लेखक – श्रमण विचिन्त्यसागर मुनि (संघस्थ)
2. संकट मोचन तारणहारे-गुरु विमर्श विधान : लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक' देवेन्द्रनगर (म.प्र.)

स्मारिकायें :

1. विमर्श वारिधि (बिजयनगर चातुर्मास 2012, स्मारिका)
2. विमर्श प्रवाह (बड़ौत चातुर्मास 2014, स्मारिका)
3. विमर्श गीतिका (टीकमगढ़ चातुर्मास 2015, स्मारिका)
4. विमर्शानुभूति (देवेन्द्रनगर चातुर्मास 2016, स्मारिका)
5. विमर्श वात्सल्य (जबलपुर चातुर्मास 2017, स्मारिका)
6. विमर्श प्रभा (छिंदवाड़ा चातुर्मास 2018, स्मारिका)

मासिक पत्रिका :

विमर्श प्रवाह (मासिक)
प्रधान संपादक – डॉ. श्रेयांसकुमार जैन (बड़ौत)
संपादिका – डॉ. अल्पना जैन (ग्वालियर)
प्रबंध संपादक – डॉ. विश्वजीत जैन (आगरा)
संपादक – पं. सर्वेश शास्त्री, पं. संकेत जैन 'विवेक'

बहुचर्चित 'जीवन है पानी की बूँद' (महाकाव्य) का उद्भव मूल रचयिता की कलम से...

बात 1997 भिण्ड चातुर्मास की है–

सूरज गुनगुनी धूप लेकर क्षितिज पर चमकने लगा। परम पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज अपने विशाल संघ के साथ प्रभातकालीन आवश्यक भक्ति क्रिया से निवृत्त हो चुके थे। प्रतिदिन की भाँति परम पूज्य गुरुदेव अपने विशाल संघ के साथ नित्य क्रिया हेतु नसियाँ जी की ओर बढ़ते जा रहे थे।

पूज्य गुरुदेव के साथ मैं भी यथाक्रम ईर्यासमिति से चल रहा था, और काव्य में रुचि होने के कारण चिंतन को आध्यात्मिक अनुभूतियों से स्नान करा रहा था। तभी अचानक चिंतन की गर्भस्थली में एक पंक्ति 'जीवन है पानी की बूँद, कब मिट जाये रे' का प्रसव हुआ, और मैं इस प्रसव की परमानंद अनुभूति का बारम्बार अनुभव करता हुआ स्मृति के दिव्य द्वार तक पहुँच गया। मैंने कभी 'होनी–अनहोनी' सीरियल देखा था, अत: होनी–अनहोनी शब्द को अपने काव्य में स्थान देने का विचार करता था, तभी अचानक नित्य क्रिया से लौटते समय चिंतन की गर्भस्थली से जुड़वाँ पंक्ति 'होनी–अनहोनी, हो–हो–2 कब क्या घट जाये रे' का प्रसव हुआ। मैं दोनों जुड़वाँ पंक्तियों का अनुभव करता हुआ, अंतरंग में गुरु आशीष की श्रद्धा से भर गया। अत: इस आध्यात्मिक भजन को पूर्ण करने में उपयोग लगाया। भजन की पूर्णता होते ही मैं पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में पहुँचा, और विनयपूर्वक अपना चिंतन मधुर स्वर में गुरु चरणों में समर्पित किया। सच कहूँ, गुरुदेव ने अत्यंत आह्लाद से भरकर मुझे शुभाशीष दिया। गुरु का वह मंगल आशीष ही है कि इस आध्यात्मिक भजन ने सभी के कंठ को स्पर्शित किया, और इस समय का बहुचर्चित भजन कहलाया। जैन हों या अजैन सभी ने इसे समभाव से स्वीकारा, और मुझे अत्यंत श्रद्धा और प्यार से 'जीवन है पानी की बूँद' चिंतन के प्रणेता, इस नाम से पुकारने लगे।

यद्यपि इस भजन को जब अन्य साधु, विद्वान्, गीतकार, गायक, अपनी प्रशंसा के लिए अपनी रचना कहकर बोलने लगे, तब पूज्य गुरुदेव को यह कहना पड़ा, कि 'जीवन है पानी की बूँद' भजन तो विमर्शसागर जी की मूल गाथाएँ है जिस पर अन्य साधु, विद्वान्, गायक तो मात्र टीकायें लिख रहे हैं।

–श्रमणाचार्य विमर्शसागर

जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य)

मूल रचयिता : भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज

जीवन है पानी की बूँद, कब मिट जाये रे–ऽऽ
होनी–अनहोनी, हो–हो–2-कब क्या घट जाये रे ऽऽ

साथ निभायेगा बेटा, सोच रहा लेटा–लेटा।
हाय बुढ़ापा आयेगा, पास न आयेगा बेटा।
ख्वाबों में तू क्यों, हो–हो–2 आनन्द मनाये रे ऽऽ

अर्द्धमृतकसम वृद्धापन, झुकी कमर सिकुड़न–सिकुड़न।
गोदी में पोता–पोती, खोज रहा बचपन यौवन।
बीते जीवन के, हो–हो–2 तू गीत सुनाये रे ऽऽ

हाथों में लकड़ी थामी, चाल हो गई मस्तानी।
यम के घर खुद जाने की, जैसे मन में हो ठानी।
बेटा बहु सोचें, हो हो–2 डोकरो कब मर जाये रे ऽऽ

चारपाई पर लेटा है, पास न बेटी–बेटा है।
चिल्लाता है पानी दो, कोई न पानी देता है।
भूखा प्यासा ही, हो–हो–2 इक दिन मर जाये रे ऽऽ

जीवन बीता अरघट में, पुण्य–पाप की करवट में।
चढ़कर अर्थी पर जाये, अन्त समय भी मरघट में।
तेरा ही बेटा, हो–हो–2 तेरा कफन सजाये रे ऽऽ

सिर पर जिसे बिठाया है, गोदी में भी खिलाया है।
लाड़ प्यार से पाला है, सुख की नींद सुलाया है।
तेरा ही बेटा, हो–हो–2 तुझे आग लगाये रे ऽऽ

जिसके लिए कमाता है, जीवन साथी बताता है।
जिसकी चिन्ता कर करके, अपना चैन गँवाता है।
देहरी से बाहर, हो–हो–2 वो साथ न जाये रे ऽऽ

ऋण मुक्ति का वर दीजिये

रचयिता : भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज

गुरुदेव मेरे आप बस, इतनी कृपा कर दीजिए।
कल्याण अपना कर सकूँ, वरदान इतना दीजिए।।

सोचूँ सदा अपना सुहित, नहिं काम क्रोध विकार हो।
हे नाथ ! गुरु आदेश का, पालन सदा स्वीकार हो।
सिर पर मेरे आशीष का, शुभ हाथ प्रभु धर दीजिए। गुरुदेव...

दृढ़ शील संयम व्रत धरूँ, नित ब्रह्मचर्य लखूँ सदा।
सीता सुदर्शन सम बनूँ, निज आत्मसौख्य चखूँ सदा।
माता सुता बहिना पिता, दृष्टि विमल कर दीजिए। गुरुदेव...

सच्चा समर्पण भाव हो, नहिं स्वार्थ की दुर्गन्ध हो।
विश्वासघात ना हम करें, हर श्वाँस में सौगंध हो।
हे नाथ! गुरु विश्वास की, डोरी अमर कर दीजिए। गुरुदेव...

जागे न मन में वासना, मन में कषायें न जगें।
हो वात्सल्य हृदय सदा, कर्तव्य से न कभी डिगें।
गुरुभक्ति की सरिता बहे, निर्मल हृदय कर दीजिए। गुरुदेव...

भावों में निश्छलता रहे, छल की रहे न भावना।
गुरु पादमूल शरण मिले, करते हैं हम नित कामना।
जिनधर्म जिनआज्ञा सुगुरु, सेवा का अवसर दीजिए। गुरुदेव...

उपकार जो मुझ पर किये, गुरुवर भुला न पायेंगे।
जब तक है तन में श्वाँस हम, उपकार गुरु के गायेंगे।
हम शिष्य हैं गुरु के ऋणी, ऋणमुक्ति का वर दीजिए। गुरुदेव...

सम्यक्त्व ज्ञान चरित्र से, सुरभित रहे मम साधना।
आचार की मर्यादा ही, हे नाथ ! हो आराधना।
स्वर-स्वर समाधिभाव का, चिंतन मुखर कर दीजिए। गुरुदेव...

कर तू प्रभु का ध्यान

रचयिता : भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज

कर तू प्रभु का ध्यान-बाबा, कर तू प्रभु का ध्यान।
निज घट में भगवान-बाबा, निज घट में भगवान।।

काँटों में भी जीवन तेरा, फूलों सा खिल जायेगा।
खोज रहा है जिसको तू वह, पलभर में मिल जायेगा।
खुद को तू पहिचान-बाबा, खुद को तू पहिचान।1।।

धन-वैभव यह महल-खजाना, कुछ भी साथ न जायेगा।
सुबह खिला जो फूल बाग में, साँझ समय मुरझायेगा।
कर ले धर्मध्यान-बाबा, कर ले धर्मध्यान।।2।।

कभी किसी का दिल दुःख जाये, ऐसे बोल कभी मत बोल।
घावों पर मल्हम बन जायें, ऐसे बोल बड़े अनमोल।
कहलाता यह ज्ञान-बाबा, कहलाता यह ज्ञान।।3।।

माता-पिता, बड़ों का आदर, धर्ममार्ग पर चलो सदा।
गुरुजन की नित सेवा करना, श्रावक का कर्तव्य कहा।
पाओगे सम्मान-बाबा, पाओगे सम्मान।।4।।

हिंसा, झूठ, कुशील, परिग्रह, चोरी यह मत पाप करो।
पाप विनाशक, धर्म प्रकाशक, णमोकार का जाप करो।
हो सम्यक् श्रद्धान-बाबा, हो सम्यक् श्रद्धान।।5।।

राग-द्वेष भावों के कारण, भवसागर में डूब रहा।
गँवा रहा भोगों में जीवन, मन फिर भी न ऊब रहा।
क्यों बनता नादान-बाबा, क्यों बनता नादान।।6।।

जिसको अपना कहा आज तक, हुआ कभी ना वह अपना।
जिसकी खातिर जिया आज तक, निकला वह सुंदर सपना।।
क्यों तू करे गुमान-बाबा, क्यों तू करे गुमान।।7।।

मेंढक ने प्रभु ध्यान किया जब, मरकर देव हुआ तत्काल।
समवसरण में प्रभु को ध्याया, जीवन उसका हुआ निहाल।
मिट जाये अज्ञान-बाबा, मिट जाये अज्ञान।।8।।

''माँ''–एक सुखद अनुभूति का एहसास

रचयिता : भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज

बेटा हो दु:ख–पीड़ा में, माँ बन जाती दीवार।
माँ के प्यार सा इस दुनियाँ में नहीं किसी का प्यार।।
ओ–ऽऽ माँ, प्यारी माँ–2

माँ की गोदी में बेटा जब चैन से सोता है।
बेटा जैसा और किसी का पुण्य न होता है।
किलकारी भर-भरकर माँ का करता है दीदार।
माँ के प्यार सा.....

बेटा जब–जब रोता है, माँ लोरी गाती है।
भूखी–प्यासी रहकर भी माँ, दूध पिलाती है।
चंदा–सूरज, अश्रु बहाते, पाने माँ का प्यार।
माँ के प्यार सा.....

कोठी–बँगला रुपया–पैसा, सब ऐशो–आराम।
माँ बिन सूना घर का आँगन, माँ को करो प्रणाम।
माँ ही घर की तुलसी है, रौनक, घर का शृंगार।
माँ के प्यार सा.....

जीवन–संगिनी पाकर माँ का प्यार भुलायेगा।
घर में दीवाली होगी पर खुशी न पायेगा।
माँ ही घर की दीवाली, होली, घर का त्यौहार।
माँ के प्यार सा.....

अपनी खुशियाँ कर न्यौछावर, देती है खुशियाँ।
बेटा समझे, न समझे, समझे न यह दुनियाँ।
माँ चलती काँटों पर, देती फूलों का उपहार।
माँ के प्यार सा.....

दुनिया छूट भी जाये, माँ का कभी न छूटे साथ।
माँ ने पकड़ा हाथ हमारा, पकड़ो माँ का हाथ।
सब तीरथ माँ चरणों में, बन जाओ श्रवण कुमार।
माँ के प्यार सा.....

राम, कृष्ण, महावीर ने माँ का मान बढ़ाया है।
जाँ देकर आजाद भगत ने, माँ को पाया है।
सदा चिरायु, सुखी रहो, भारत माँ करे पुकार।
माँ के प्यार सा.....

वर्तमान में जातिवाद–पंथवाद में बँटती हुई जैन समाज का ध्यान
आकर्षित करनेवाली और सम्यक् बोध प्रदान करनेवाली
भावलिंगी संत श्रमणाचार्य
श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज द्वारा रचित पंक्तियाँ

(1)

तेरा और बीस पंथ, उलझे हैं श्रावक संत,
कोई तेरा कोई बीस करते बढ़ाई हैं।
करते हैं राग–द्वेष, जानें नहीं धर्म लेश,
मंदिरों में खींचतान करते लड़ाई हैं।।
कर रहे धर्म लोप, मानते हैं धर्म गोप,
एक दूसरे की अहंकार की चढ़ाई है।
तेरा–बीस के बयान, जैसे हिन्द–पाकिस्तान
हाय जैन एकता भी आज लड़खड़ाई है।।

(2)

कोई है बघेरवाल, कोई खण्डेलवाल,
कोई अग्रवाल तो कोई परवार है।
कोई–कोई जैसवाल, कोई–कोई ओसवाल,
कोई पोरवाल कोई गोल शृंगार है।।
बंद हुये बोलचाल, वाल की खड़ी दीवाल,
जातियों का भूत सबके ही सिर सवार है।
मंदिरों में अब जैन कहीं दिखते ही नहीं,
मंदिरों पे अब जातियों का अधिकार है।।

(3)

जातिमद चढ़ रहा, पंथभेद बढ़ रहा,
जहाँ देखो वहाँ राग–द्वेष की ही बात है।
महावीर हुये खण्डेलवाल, अग्रवाल,
आदि–आदि मंदिरों पे लिखा ये दिखात है।।
कहीं महावीर हुये तेरा पंथी, बीस पंथी,
धर्मात्माओं ने भी दी क्या सौगात है।
सोचा जब मैं भी महावीर को पहचान दूँ,
तो धरा महावीर रूप, मेरी क्या औकात है।।

विमस्स-अट्ठगं

(डॉ. उदयचन्द्र जैन कृत)

बंधं पबंभ-अदि-णंद-विराग-मुत्तिं
तित्थेस-णायग-जिणं सयलं च तित्थं।
तच्चं अणंत-सुविस्स-विमस्स-णंदं
णम्मेमि रट्ठिग-सुजोगि-विमस्स-सूरिं।।1।।

अप्पं विसुद्ध-परिणाम-विमस्स-णीरं।
णीरेज्ज जीवण-जलं बहुमुल्ल-खीरं।
चक्खेदि सच्छ-परमप्प-रसं च णिच्चं।
णम्मेमि रट्ठिग-सुजोगि-विमस्स-सूरिं।।2।।

सारं च सार-समयं समयं च सारं
पत्तेज्ज सो णियमसार-पहुत्त-धीरं।
णिम्मल्ल-मल्ल-मदिमल्ल-सुदं च सुत्तं।
णम्मेमि रट्ठिग-सुजोगि-विमस्स-सूरिं।।3।।

रम्माहिरम्म-कवि-कम्म-पहाण-कव्वं।
गीएज्ज गीद-जण-खेत्त-सु-विज्ज-विज्जे।
मज्झप्पदेस-अणुसिक्खण-साल-साले
णम्मेमि रट्ठिग-सुजोगि-विमस्स-सूरिं।।4।।

आयार-पूद-सुविराग-विराग-सूरिं
णाणं च दंसण-चरित्त-तवं च णीरं।
णेदूणणिच्च रमदे हु विमस्स-छंदं।
णम्मेमि रट्ठिग-सुजोगि-विमस्स-सूरिं।।5।।

धुव्वो हु तारग-जतार-सुणंदणो सो।
सिप्पी इमो विविह-कब्ब कलंस-चंदो।
चारित्त-सम्मग-रही दु विमस्स-सीलो।
णम्मेमि रट्ठिग-सुजोगि-विमस्स-सूरिं।।6।।

संपुण्ण-सारद-बई सुद-आगमम्हि।
आरूढ़-हंस-समणाइरियो विमस्सो।
लिप्पि सिजेदि लिवि-बंह-विमस्स-णामं
णम्मेमि रट्ठिग-सुजोगि-विमस्स-सूरिं।।7।।

सामाण्ण-धम्म-अणुपालिद-भावलिंगी।
झाणे तवे समयसार समे णिमग्गो।
मग्गटपभावण-गुणी सुद-सेवि-साधुं।
णम्मेमि रट्ठिग-सुजोगि-विमस्स-सूरिं।।8।।

विमस्स-उदयो चंदो, विमस्से सम-संतए।
दंसेदि सावगाणं च, वाए वागेसरी-समे।।

शान्तिनाथ कीर्तन

रचयिता : भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज

जय हो, जय हो, जय हो, जय हो, जय हो, भगवन्-2
जय हो, जय हो, जय हो, जय हो, शान्ति भगवन्।

हम आये हैं - द्वार तुम्हारे-2
दे दो प्रभु जी, हमको सहारे-2
शान्तिनाथ भगवन्-भगवन्-भगवन्ऽऽ
जय हो.....

छवि वीतरागी-प्यारी प्यारी लागे-2
दरश जो पाया-धन्य भाग जागे-2
चरणों करुँ नमन-नमन-नमनऽऽ
जय हो.....

सर्वज्ञ स्वामी-शरण में आया-2,
कहीं न मिला जो-वह सुख पाया
हर्षित हुए नयन-नयन-नयनऽऽ
जय हो.....

हित उपदेशी-आप कहाते-2
हम गुण गाने-भक्त बन जाते-2
छोड़ूँ न अब चरण-चरण-चरणऽऽ
जय हो.....

अहार जी के - बाबा कहाते-2
यक्ष यक्षिणी भी-सिर को नवाते-2
झुकते हैं मुनिगण-मुनिगण-मुनिगणऽऽ
जय हो.....

दुखिया हो कोई-द्वार पे आये-2
हँसता हुआ ही-द्वार से जाये-2
श्रद्धा हो पावन-पावन-पावनऽऽ
जय हो.....

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज ऐसे प्रथम दिगम्बराचार्य हैं, जिनकी यह रचना म.प्र. शिक्षा बोर्ड ने कक्षा ग्यारहवीं की पुस्तक 'मकरन्द' में शामिल की है।

देश और धर्म के लिये जिओ

देश और धर्म के लिए जिओ–2
हर कदम–कदम पे सबको ले
एकता अखण्डता की बात ले
शुभ–पवित्र लक्ष्य के लिए जिओ
देश.............

मातृभूमि पर भी हमको गर्व हो
मातृभूमि रक्षा एक पर्व हो
ऐसे राष्ट्र पर्व के लिए जिओ
देश.............

श्रम सभी का एक मूलमंत्र हो
श्रम के लिए हर मनुज स्वतंत्र हो
लोकलाज शर्म छोड़कर जिओ
देश.............

हो अनाथ दुखिया अगर राह में
हो सहानुभूति हर निगाह में
करुणा और प्रेम के लिए जिओ
देश.............

भाईचारा सबके दिल में हो सदा
कटुता घृणा बैरभाव हो विदा
जीना, श्रेष्ठ कर्म के लिए जिओ
देश.............

प.पू. भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज ऐसे प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य हैं, जिनके द्वारा नूतन लिपि का सृजन किया गया, जिसे 'विमर्श लिपि' की संज्ञा दी गई है।

विमर्श लिपि

त वर्ग	त	थ	द	ध	न
विमर्श लिपि					
प वर्ग	प	फ	ब	भ	म
विमर्श लिपि					
अंतस्थ	य	र	ल	व	
विमर्श लिपि					
ऊष्माण	श	ष	स	ह	
विमर्श लिपि					
संयुक्त	क्ष	त्र	ज्ञ		
विमर्श लिपि					

विमर्श लिपि में शब्द के नीचे लाईन होती है।
चिन्ह भी लाईन पर ऊपर नीचे आगे-पीछे लगते हैं।
जैसे

राम जाता है

क्या राम जाता है?

शांति भक्ति का अतिशय देख रोमांचित हूँ

भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज

संसारी जीव एक व्यापारी की तरह है, जो नित्य शुभ और अशुभ कर्म का संचय करता है, उनका फल भोगता है। अशुभ कर्म का फल दुःख है। शुभ कर्म का फल सुख। मोक्षमार्ग शुभाशुभ कर्म से मुक्त अतीन्द्रिय सुख का साधन है। मोक्षमार्गी साधक प्रधानतया अतीन्द्रिय सुख के मार्ग का आश्रय करते हैं। कदाचित् शुभमार्ग का आश्रय कर अशुभ कर्म की शान्ति का उपाय भी करते हैं, जिनधर्म की प्रभावना करते हैं। जैसे 48 कोठरी में बंद आचार्य मानतुंग स्वामी ने आदिनाथ स्तुति की और ताले स्वयमेव खुल गये। आचार्य वादिराज स्वामी ने जिनस्तुति की और कुष्ठ रोग तत्काल ठीक हो गया। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने शांति स्तुति की और नेत्र ज्योति आ गई। कवि धनंजय ने आदि स्तुति की और पुत्र का विष तत्काल शान्त हो गया, पुत्र मानो सोते से जाग गया, जिनधर्म की भी महाप्रभावना हुई।

सच 25.12.2015 का दिन मैं कभी भूल नहीं सकता जब दोपहर सामायिक हेतु चतुर्दिक् कायोत्सर्ग कर मैं बैठने ही वाला था कि 15 दिन से अत्यन्त अस्वस्थ आँचल दीदी को संघस्थ दीदीयाँ व्हील चेयर से आशीर्वाद हेतु लाईं। पैरालाइसिस जैसी शिकायत होने से पैर-हाथ से तो असमर्थता थी ही, आज आँखों से दिखना एवं कानों से सुनना भी बंद हो गया था। अत्यन्त दयनीय हालत में दीदी को देखकर हृदय करुणा से द्रवित हो उठा। मन ही मन भगवान शांतिनाथ का स्मरण कर प्रभु से बोला - 'हे नाथ! 22 वर्षीय असाध्य रोग से पीड़ित आँचल दीदी की अस्वस्थता आँखों से देखी नहीं जाती। प्रसिद्ध डॉक्टर्स भी स्पष्ट मना कर चुके हैं कि दीदी अब कभी स्वस्थ नहीं हो सकतीं। हमारे मेडिकल साइंस में यह प्रथम केस है कि दीदी की रिपोर्ट नॉर्मल है और अस्वस्थता बढ़ती जा रही है। हे प्रभो! अब तो एकमात्र आपकी भक्ति ही शरण है। सच्चा भक्त आपकी भक्ति के फल से जब पूर्ण निरामय अवस्था को प्राप्त कर सकता है, तो इस रोग से मुक्ति क्यों नहीं मिलेगी।' मैं अत्यन्त करुणा से भरा हुआ आँचल दीदी से बोला - बेटा! मैं तुम्हें शांतिभक्ति सुना रहा हूँ, मेरी आज की यही सामायिक है, मैं भगवान शांतिनाथ को हृदयकमल पर विराजमान करके आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी का भक्ति से स्मरण कर, पूज्य आचार्य गुरुदेव विरागसागर जी का आशीष अनुभव कर अत्यन्त तन्मयता के साथ शांतिभक्ति का उच्चारण करने लगा। अपूर्व विशुद्धि अनुभव हो रही थी, रोम-रोम भक्ति रस में सराबोर था। तभी अचानक आँचल दीदी की आँखों में नेत्र ज्योति आ गई, कानों से स्पष्ट सुनाई देने लगा, मुख का टेढ़ापन दूर हो गया और निश्चल हाथ की अंगुलियाँ स्वयमेव खुल गईं, हाथ भी सहज चलने लगा। कमरे में जितने लोग थे, सभी जय-जयकार करने लगे। शांतिभक्ति का अतिशय देख सभी रोमांचित हो गये।

आँचल दीदी बोलीं - गुरुदेव! मेरा चेहरा पहले जैसा हो गया है। मैं पहले की तरह ही बोल रही हूँ न। मुझे पहले की तरह ही दिखाई एवं सुनाई भी दे रहा है। मैंने कहा - बेटा! यह सब भगवान शांतिनाथ की कृपा है। आँचल दीदी बोलीं - गुरुदेव! अब तो मैं आहार का शोधन भी कर सकती हूँ, और हाथों से आहार दे भी सकती हूँ, तभी उनका ध्यान अपने संवेदना शून्य पैर पर गया, बोलीं गुरुदेव! यदि मेरा पैर भी ठीक हो जाता तो मैं आपको जल्दी आहार दे पाती। मैंने कहा - बेटा! भगवान शांतिनाथ की भक्ति से वह भी शीघ्र ठीक होगा। मैंने पुन: दीदी को शांतिभक्ति सुनाना शुरू किया, दीदी भी साथ पढ़ने लगीं। अहो! अद्भुत आनन्द रस बहने लगा प्रभु की भक्ति करते। तभी दीदी के पैर की अंगुलियाँ चलने लगीं और दीदी अपने पैरों पर खड़ी हो गईं। व्हील चेयर को पीछे धकेल दिया और कमरे में ही चलने लगीं। अभी शांतिभक्ति पूर्ण नहीं हुई थी, अत: मैंने कहा - बेटा! भक्ति कर लो। सभी ने भावपूर्वक शांतिभक्ति पूर्ण की। आँचल दीदी बोलीं - गुरुदेव! ऐसा लग रहा है मानो सोकर उठी हूँ। गुरुदेव! मैं तो बिल्कुल ठीक हो गई। मैंने कहा - बेटा! शांतिभक्ति के प्रसाद से तुम ठीक हुई हो। दीदी बोलीं - गुरुदेव सब आपकी ही कृपा है।

कमरे में दीदी के माता-पिता भी उपस्थित थे। यह भक्ति का चमत्कार देख उनकी आँखों से खुशी के आँसू ढुलक रहे थे। मैंने कहा - अब सभी लोग भगवान शांतिनाथ के पास चलेंगे। एक बार वहाँ भी शांतिभक्ति का पाठ करेंगे। दीदी ने कहा - अब मैं व्हील चेयर से नहीं, पैदल ही चलूँगी। अहो! दीदी को पैदल चलते देख उपस्थित सैकड़ों भक्त जन आश्चर्य करने लगे। हमने शांति जिनालय में पुन: शांतिभक्ति का पाठ किया और भगवान शांतिनाथ के चरणों का भावपूर्वक स्पर्श कर आँचल दीदी को एवं संघस्थ सभी साधुओं को आशीर्वाद दिया। फिर हम सभी प.पू. सूरिगच्छाचार्य गुरुदेव श्री विरागसागर जी के पास पहुँचे, वहाँ दीदी ने आचार्य वंदना की। पूज्य गुरुदेव ने मंगल आशीर्वाद दिया, और कहा - आहारजी में घटी यह अतिशयकारी घटना यहाँ चिरकाल तक गुंजायमान होती रहेगी।

सच, मैं बेहद रोमांचित और आनंदित हूँ। शांतिभक्ति का पाठ करते समय जो विशुद्धि और आनंद का अनुभव हुआ, वह शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता। भक्ति का यह अतिशय चमत्कार स्मृति पटल पर बार-बार आता ही रहता है। जिनेन्द्र भक्ति का माहात्म्य यही तो है-

विघ्नौघा प्रलयं यान्ति, शाकिनी भूत पन्नगा:।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे।।

अर्थात् जिनेश्वर की स्तुति करने पर विघ्नों का समूह तथा शाकिनी, भूत, सर्प आदि की बाधाएँ क्षण भर में क्षय को प्राप्त हो जाती हैं और विष भी निर्विषता को प्राप्त होता है।

जानें क्या है जिनागम पंथ?

-भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागर जी महामुनिराज

'जिनागम पंथ' अनादि-अनिधन, विश्व मैत्री, प्रेम, एकता का परम पावन संदेश है, जो तीर्थंकर भगवंत,केवली अरिहन्त, गणधर संत, आचार्य-उपाध्याय-निर्ग्रंथ के मुख से अतीतकाल में कहा गया, वर्तमान में कहा जा रहा है और भविष्यकाल में कहा जायेगा।

अहो! तीर्थंकर जिन की वाणी यानि जिनवाणी, जिनश्रुत, जिनागम और इसमें वर्णित आत्महितकारी पंथ, मार्ग। यही है जिनागम पंथ।

अहो! जिनागम में कथित पंथ अर्थात् मार्ग, यही सच्चा था सच्चा है और सच्चा रहेगा। तीर्थंकर सर्वज्ञ जिन की वाणी ही जिनागम है। और जिनागम में कथित श्रमण-श्रावक धर्म यह पंथ अर्थात् मार्ग है। जो श्रमण-श्रावक धर्म के मार्ग पर चल रहा है वह जिनागम पंथ का पथिक 'जिनागम पंथी' है।

सचमुच जिनागम पंथ शाश्वत था, शाश्वत है, शाश्वत रहेगा। जो जिनागम पंथ का पथिक है वह सम्यग्दृष्टि, श्रावक अथवा श्रमण संज्ञा को प्राप्त जिनागम पंथी है। जो जिनागम पंथ की श्रद्धा से रहित है वह मिथ्यादृष्टि है।

अहो! विदेह क्षेत्र में विराजित विद्यमान बीस तीर्थंकरों के मुख से गणधरादि परमेष्ठी भगवंतों के द्वारा आज भी जिनवाणी, जिनश्रुत, जिनागम प्रगट हो रहा है।

धन्य हैं, वे भव्य जीव जो जिनागम कथित समीचीन पंथ अर्थात् जिनागम पंथ को स्वीकार कर अनादि मोह, राग-द्वेष की परम्परा का विच्छेदन कर आत्मकल्याण कर रहे हैं। अहो! जिनागम पंथ के अलावा अन्य कोई कल्याण का मार्ग नहीं है। जिनागम पंथ के अलावा अन्य पंथ उन्मार्ग हैं, अकल्याणकारी हैं।

जयदु जिणागम पंथो, रागो-दोसो य णासगो सेयो।
पंथो तेरह - बीसो, रागादि - वड्ढिओ असेयो।।

जो रागद्वेष का नाश करनेवाला है, कल्याणकारी है, ऐसा 'जिनागम पंथ जयवंत हो'। इसके अलावा तेरहपंथ, बीसपंथ आदि पंथ, रागद्वेष को बढ़ाने वाले हैं, अकल्याणकारी हैं।

अहो! कालदोष के कारण कतिपय विद्वानों ने तीर्थंकर जिनदेव के मुख से भाषित अर्थात् सर्वांग से खिरनेवाली दिव्यध्वनि में कथित जिनागम पंथ से बाह्य तेरहपंथ, बीसपंथ, शुद्ध तेरहपंथ आदि नाना पंथों की संज्ञाएँ रखकर परस्पर रागद्वेष को जन्म दिया है। कुछ विद्वान एवं श्रमण संज्ञा से भूषित जीवों ने भी ख्याति-पूजा-लाभ के लिए नये-नये पंथ गढ़कर भव्य जीवों का महान् अहित किया है।

अहो! अज्ञानता, आज ये जीव इन नाना संज्ञाओं से पंथों का पोषणकर जिनागम पंथ से दूर खड़े हो गये हैं। और कल्पित पंथों का पोषणकर अपना आत्म पतन ही कर रहे हैं। तेरह-बीस आदि संज्ञाएँ जिनेन्द्र देव की वाणी से बाह्य हैं। ये जिनागम पंथ से बाह्य पंथ ही वर्तमान में राग-द्वेष का कारण बने हुये हैं। चारों तरफ समाज में विघटन, मंदिरों में खींचतान, इन कल्पित तेरह-बीस आदि पंथों की ही देन है। जिनागम पंथ सभी को एक सूत्र में बाँधकर मैत्री-प्रेम-वात्सल्य का संदेश देता है।

अहो! आज भी यदि स्वकल्पित पंथों का दुराग्रह छोड़कर सब जीव जिनेन्द्र देव की वाणी यानि जिनवाणी, जिनागम में श्रद्धा रखें और जिनागम वर्णित पंथ यानि 'जिनागम पंथ' को सच्ची श्रद्धा से स्वीकारें, तो सर्व समाज में आज भी एकता का सूत्रपात हो सकता है। आपस के रागद्वेष मिट सकते हैं और जिनशासन गौरवान्वित हो सकता है।

'जयदु जिणागम पंथो।'
'जिनागम पंथ जयवंत हो।'

आइरिय-विमरससायरेण विरइदा

सरूव थुदी

उवओगमओ अप्पा अहं, जाणगसरूवो मम अहा।
णिद्दंदो अहमणिबंधो हं, आणंदकंद-सहज-महा।।
जाणिय सया दु संतमओ, णिय संतरस-पीउं सया।
णिय संतरस-लीणम्मि हं, णिय चेद-धुवरूवो अहा।।1।।

महसु असंखपदेसेसुं, भयवंत-अप्पा णिवसदि।
हं हुवमि परमप्पा सयं, परमप्प-रूवो विलसदि।।
हं सिद्धकुल-अंसो हुवमि, हु दंसावदि भविदव्वदा।
णिय सत्ति-अंसदो सिद्धो हं, दव्वस्स णिय णिय दव्वदा।।2।।

रागादि-भाव दु विगडीआ, दव्वम्मि णिय णवि दंसणं।
परदव्व-परभावाण दु, रूवम्मि चिद णवि फंसणं।।
पुहु सव्वदो विर सव्वदो, अवियाररूवो मम अहा,
हं पूर-सहजसहावदो, जो हु वीदरागमओ कहा।।3।।

गुण-दव्वदो हं धुवमहा, परिणमं णियदं पत्तो हं।
परिणदं अत्तमओ खलु, सत्तीए णियदओ अत्तो हं।।
कारण सयं हं कज्जमवि, सिवमग्गो मग्गफलं सयं।
हं भावलिंगी संतो जाणग- हुवमि सफल हु जीवणं।।4।।

स्वरूप स्तुति

(आचार्य विमर्शसागर कृत)

हूँ आत्मा उपयोगमय, ज्ञायक स्वभाव मेरा अहा।
निर्द्वन्द हूँ निर्बन्ध हूँ, आनन्दकन्द सहज अहा।।
नित शान्तरसमय जानकर, निज शान्तरस नित पानकर।
निज शांतरस में लीन हूँ, ध्रुवरूप निज अनुभव अहा।।1।।

मेरे असंख्यप्रदेश में, भगवान् आतम बस रहा।
मैं हूँ स्वयं परमात्मा, परमात्मरूप विलस रहा।।
हूँ सिद्धकुल का अंश मैं, बतला रही भवितव्यता।
मैं सिद्ध शक्ति अंश से, निजद्रव्य की निज द्रव्यता।।2।।

रागादि भाव विकार का, निजद्रव्य में दर्शन नहीं।
परद्रव्य या परभाव का, चित् रूप स्पर्शन नहीं।।
सबसे पृथक सबसे विलग, अविकार रूप मेरा अहा।
मैं पूर्ण सहज स्वभाव से, जो वीतरागमयी कहा।।3।।

हूँ द्रव्य-गुण से ध्रुव अहा, नित परिणमन को प्राप्त हूँ।
परिणमन निश्चय आप्तमय, शक्ति से निश्चय आप्त हूँ।।
कारण स्वयं हूँ कार्य भी, शिवमार्ग स्वयं हूँ मार्गफल।
मैं भावलिंगी संत हूँ, ज्ञायक हूँ मैं, जीवन सफल।।4।।

भूमिका

कल्याण मन्दिर स्तोत्र और उसके रचयिता

जैनधर्म में जहाँ ज्ञान को महत्त्व दिया गया है वहाँ भक्ति को भी उल्लेखनीय स्थान मिला है। स्वामी समन्तभद्र जैसे उद्भट आचार्यों ने अपने अनेक ग्रन्थ या यों कहिए कि रत्नकरण्डश्रावकाचार को छोड़कर शेष सभी उपलब्ध ग्रन्थ अरिहन्त भगवान के स्तवन में ही रचे हैं। उनके स्वयम्भूस्तोत्र देवागमस्तोत्र, युक्त्यनुशासनस्तोत्र और जिनशतक (स्तुतिविद्या) ये स्तोत्र-ग्रन्थ अर्हद्भक्ति के उत्कृष्ट नमूने हैं और भारतीय स्तोत्र-साहित्य में बेजोड़ एवं अद्वितीय कृतियाँ हैं। आचार्य मानतुङ्ग का भक्तामरस्तोत्र, धनञ्जय कवि का विषापहारस्तोत्र, आचार्य वादिराज का एकीभावस्तोत्र, श्रीभूपालकवि (भोजराज महाराज) का जिनचतुर्विंशतिकास्तोत्र और आचार्य कुमुदचन्द्र का प्रस्तुत कल्याण मंदिर स्तोत्र ये स्तुति-रचनाएँ भी अर्हद्भक्ति की अपूर्वधारा को बहाने वाली हैं।

भक्ति और उसका उद्देश्य

संसारी प्राणी राग, द्वेष, लोभ, अहंकार, अज्ञान आदि अपने दोषों से निरन्तर दु:खी बना चला आ रहा है और कभी-कभी वह कर्म की चपेट में इतना आ जाता है कि वह घबरा उठता है और उस दु:ख से छूटने के लिये ऐसी जगह अथवा ऐसी आत्मा की तलाश करता है- उसओर अपना ध्यान केन्द्रित करता है जहाँ दु:ख नहीं है और न दु:ख के कारण राग,द्वेष, अज्ञानादि हैं। इस तलाश में उनकी दृष्टि वीतराग आत्मा में जाकर स्थिर हो जाती है और उसके दु:ख-मोचनादि गुणों में अनुराग करने लगती है। इस गुणानुराग को ही भक्ति कहते हैं। श्रद्धा, प्रार्थना, स्तुति, विनय, आदर, नमस्कार, आराधना आदि ये सब उसी भक्ति के रूप हैं और भक्ति का यही प्रयोजन अथवा उद्देश्य है कि स्तुत्य के वे दु:खरहितादिगुण भक्त को प्राप्त हो जाय वह भी उन जैसा बन जाय। इसी बात को प्रस्तुत स्तोत्र में भी निम्न प्रकार बतलाया है-

त्वं नाथ दु:खिजन वत्सल! हे शरण्य!
कारुण्यपुण्यवसते! वशिनां वरेण्य!
भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय,
दु:खाऽङ्कु रोद्दलन-तत्परतां विधेहि।।

'हे नाथ! आप दु:खी जनों के वत्सल हैं, शरणागतों को शरण देने वाले हैं, परम कारुणिक हैं और इन्द्रिय विजेताओं में श्रेष्ठ हैं, मुझ भक्त को भी दया कर आप दु:ख और दु:खदायी अज्ञानादि को नाश करने वाला बनायें।'

यही समन्तभद्र स्वामी ने, जिन्हें विद्वानों द्वारा 'आद्य स्तुतिकार' कहे जाने का गौरव प्राप्त है, स्वयम्भूस्तोत्र में शान्तिजिन का स्तवन करते हुए कहा है–

स्वदोष–शान्त्या विहितात्मशान्ति:,
शान्ते र्विधाता शरणं गतानम्।
भूयाद् भवक्लेश भवोपशान्त्यै,
शान्ति र्जिनो मे भगवान् शरण्य:।।

'हे शान्तिजिन! आपने अपने दोषों को शांत करके आत्मशान्ति प्राप्त की है तथा जो आपकी शरण में आये उन्हें भी आपने शान्ति प्रदान की है। अत: आप मेरे लिये भी संसार के दु:खों तथा भयों अथवा संसार के दु:खों के भयों को शान्त (दूर) करने में शरण हों।'

यही कारण है कि स्तुति में भक्त यह कामना करता है कि 'हे भगवान्! मेरे दु:ख का क्षय हो, कर्म का नाश हो, आर्त–रौद्र ध्यान रहित सम्यक् मरण हो और मुझे बोधि (सम्यग्दर्शनादि) का लाभ हो। आप तीनों जगत के बन्धु हैं, इसलिये हे जिनेन्द्र! मैं आपकी शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

जैसा कि एक प्राचीन निम्न गाथा में बतलाया गया है–

दुक्ख–खओ कम्म–खओ, समाहिमरणं च बोहिलाहो य।
मम होउ तिजग–बंधव! तव जिणवर! चरण–सरणेण।।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि वीतरागदेव की उपासना अथवा भक्ति से क्या दु:खों और दु:ख के कारणों का अभाव सम्भव है? जब वे वीतरागी हैं तो दूसरे के दु:खादि को दूर करने में वे समर्थ कैसे हो सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वीतरागदेव विशुद्ध एवं पवित्र आत्मा हैं उनके स्मरणादि से आत्मा में शुभ परिणाम होते हैं और उन शुभ परिणामों से पुण्य प्रकृतियों का उपार्जन तथा पाप प्रकृतियों का ह्रास होता है और उस हालत में वे पाप प्रकृतियाँ भक्त के अभीष्ट दु:खों तथा दु:ख के कारणों के अभाव में बाधक नहीं हो पातीं– उसे उसके अभीष्टफल की प्राप्ति अवश्य हो जाती है। इसी बात को एक निम्नपद्य में बहुत ही स्पष्टता के साथ में बतलाया गया है–

नेष्टं विहन्तुं शुभभाव–भग्न–रसप्रकर्ष: प्रभुरन्तराय:।
त्वत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थदाऽर्हदादे:।।

'अरिहन्तादि परमेष्ठियों के गुणों में भक्तिपूर्वक किया गया नमस्कारादि अभीष्टफल को देता हूँ। साथ ही उससे पैदा हुए शुभ परिणामों के सामर्थ्य से अन्तरायकर्म (पाप कर्म) निर्वीर्य होकर नष्ट हो जाता है और वह इष्ट का विघात करने में समर्थ नहीं होता।'

इसी स्तोत्र में और भी एक जगह कहा गया है:–

ह्रद्वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिलीभवन्ति:
जन्तो: क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धा:।
सद्यो भुजङ्गम मया इव मध्यभाग,
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य।।

'हे विभो! जिस प्रकार चन्दन के वन मे मयूर (मोर) के पहुंचते ही वृक्षों से लिपटे सर्प तत्काल उनसे अलग हो जाते हैं उसी प्रकार भक्त के हृदय में आपके विराजमान होने (स्मरणादि किये जाने) पर अत्यन्त गाढ़ अष्ट कर्मों के बन्धन भी क्षण भर में ही ढीले पड़ जाते हैं।'

इतना ही नहीं बल्कि वह परमात्मदशा को भी प्राप्त हो जाता है। जैसा कि इसी स्तोत्र के निम्न पद्य में प्रतिपादन किया गया है।

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविन: क्षणेन, देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके, चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदा:।।

'हे जिनेश! जिस प्रकार धातु विशेष (अशुद्ध स्वर्णादि) अग्नि की तेज अर्चि से अपने पाषाणरूप अशुद्धभाव को छोड़कर शीघ्र ही सोना हो जाता है उसी प्रकार आपके ध्यान से संसारी जीव भी शरीर का त्याग कर अशरीर परमात्मावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।'

विद्यानन्दस्वामी भी अपनी आप्तविषय पर लिखी गई आप्त परीक्षा में यही बतलाते हुए कहते हैं–

श्रेयोमार्गस्य संसिद्धि:, प्रसादात्परमेष्ठिन:।
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं, शास्त्रादौ मुनिपुङ्गवा:।।

'परमेष्ठी के गुणस्मरणादि से स्तुतिकर्ता को श्रेयोमार्ग (सम्यग्दर्शनादि) की प्राप्ति और ज्ञान दोनों होते हैं। अत: बड़े–बड़े मुनीश्वरों ने उनका गुणस्तवन किया है।'

तत्त्वार्थसूत्रकार महान् आचार्य श्रीगृद्धपिच्छ भी इसी बात को प्रदर्शित करते हुए अपने तत्त्वार्थ सूत्र के शुरू में निम्नप्रकार मंगलाचरण रूप गुणस्तोत्र करते हैं–

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये।।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि वीतराग देव को भक्त की स्तुति–प्रार्थना अथवा नमस्कारादि से कोई प्रयोजन नहीं है उसे वह करे चाहे न करे, क्योंकि वह वीतराग एवं वीतद्वेष है और इसलिए उसके करने से वह प्रसन्न और न करने से अप्रसन्न नहीं होता। फिर भी उसके पवित्र गुणों के स्मरण से भक्त का मन अवश्य पवित्र होता है जैसा कि समन्तभद्र स्वामी ने कहा है।

न पूज्याऽर्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ! विवान्तवैरे।
तथापि ते पुंण्यगुणस्मृति र्नः, पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः।।

इतना ही नहीं बल्कि वीतराग देव की स्तुति–प्रार्थनादिक करने वाला तो स्वभावतः सुखों एवं श्रीसम्पन्नता को प्राप्त होता है और निन्दा करने वाला दुःख को पाता है। किन्तु वीतराग देव दर्पण की तरह दोनों में राग–द्वेष रहित रहते हैं। जैसा कि स्वामी समन्तभद्र और आचार्य धनंजय के निम्न पद्यों से प्रकट है–

(क) सुहत्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते, द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते।
भवानुदासीन–तमस्तयोरपि, प्रभो! परं चित्रमिदं तवेहितम्।।
स्वयम्भूस्तोत्र।।69।।

(ख) उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि, त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखम्।
सदाऽवदात–द्युतिरेकरूप–स्तयोस्त्वमादर्श इवाऽवभासि।।
विषापहार स्तोत्र।।7।।

इस सब कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि परम वीतराग देव की भक्ति से संसारी जीवों को दुःखों का नाश आदि अभीष्ट फल अवश्य प्राप्त होता है। अतः भक्ति को लेकर जैनधर्म में जैनाचार्यों द्वारा विपुल साहित्य की रचना होना सर्वथा उपयुक्त एवं स्वाभाविक है।

प्रस्तुत स्तोत्र के विषय में–

प्रस्तुत कल्याणमन्दिर स्तोत्र भक्तामरस्तोत्र की तरह अतिशयपूर्ण एवं भावगर्भ भक्तिविषय की एक श्रेष्ठ रचना है। इसके भाव और भाषा दोनों बड़े ही

विशद है। इसमें भक्ति की जो धारा प्रवाहित है वह अनूठी है। अनुश्रुतियों तथा स्तोत्र के अन्तःपरीक्षण से ज्ञात होता है कि इसकी रचना उस समय हुई है जब आचार्य श्री पर कोई विपत्ति आई हुई थी। स्पष्ट है कि जैनाचार्यों ने जो स्तवन रचे हैं वे उन पर संकट आने पर जिनशासन का प्रभाव और चमत्कार दिखाने के लिये ही रचे हैं। जैसे समन्तभद्र स्वामी ने शिवपिण्डी को नमस्कार करने के लिये बाध्य करने का प्रसंग उपस्थित होने पर स्वयम्भूस्तोत्र की रचना की, आचार्य मानतुङ्ग ने 48 तालों के अन्दर बन्द किये जाने पर भक्तामरस्तोत्र बनाया, आचार्य धनञ्जयकवि ने अपने पुत्र के सर्प द्वारा डसे जाने पर विषापहारस्तोत्र को रचा और आचार्य वादिराज ने कुष्टरोग से पीड़ित होने पर एकीभाव स्तोत्र बनाया। उसी प्रकार आचार्य कुमुदचन्द्र पर भी किसी कष्ट के आने पर उनके द्वारा इस स्तोत्र की रचना हुई है। कहा जाता है कि इन्होंने इस स्तोत्र द्वारा भगवान पार्श्वनाथ का स्तवन करके एक स्तम्भ से उनकी प्रतिमा प्रकटित की थी और जिनशासन का प्रभाव एवं चमत्कार दिखाया था।

इस स्तोत्र का दूसरा नाम 'पार्श्वजिनस्तोत्र' भी है। जैसा कि इसके दूसरे पद्य में प्रयुक्त 'कमठ–स्मय–धूमकेतुः' नाम से प्रकट है, जो भगवान पार्श्वनाथ के लिये आया है। 'कल्याण मन्दिर' शब्द से प्रारम्भ होने के कारण इसे कल्याण मन्दिर स्तोत्र उसी प्रकार कहा जाता है जिस प्रकार आदिनाथ स्तोत्र को 'भक्तामर' शब्द से शुरू होने से 'भक्तामर स्तोत्र' कहा जाता है।

इस सुन्दर कृति को भक्तामरस्तोत्र की तरह दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय मानते हैं। श्वेताम्बर इसे सन्मतिसूत्र आदि के कर्ता श्वेताम्बर विद्वान् सिद्धसेन दिवा की रचना बतलाते हैं और दिगम्बर स्तोत्र के अन्त में आये 'जननयन–कुमुदचन्द्र–प्रभास्वराः' आदि पद्य में सूचित 'कुमुदचन्द्र' नाम से इसे दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्र की कृति मानते हैं। इस सम्बन्ध में यहाँ खास तौर से ध्यान देने योग्य बात यह हैं कि इस स्तोत्र में 'प्राग्भारसंभृतनभांसि रजाँसि रोषात्' आदि 31 वें पद्य से लेकर 'ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्य मुण्ड' आदि 33वें पद्य तक तीन पद्यों में भगवान् पार्श्वनाथ पर दैत्य कमठ द्वारा किये गये उपसर्गों का उल्लेख किया गया है जो दिगम्बर परम्परा के अनुकूल है और श्वेताम्बर परम्परा के प्रतिकूल है, क्योंकि दिगम्बर परम्परा में तो भगवान पार्श्वनाथ को सोपसर्ग और अन्य 23 तीर्थंकरों को निरुपसर्ग प्रतिपादन किया गया है और श्वेताम्बरीय आगम सूत्रों तथा आचारांगनिर्युक्ति में वर्धमान (महावीर) को सोपसर्ग और 23 तीर्थंकरों को जिनमें

भगवान पार्श्वनाथ भी हैं, निरुपसर्ग बतलाया है। जैसा कि उक्त निर्युक्ति गत निम्नगाथा से प्रकट है–

सव्वेसिं तवोकम्मं, णिरूवसग्गं तु वण्णियं जिणाणं।
णवरं तु वड्ढमाणस्स, सोवसग्गं मुणेयव्वं।।246।।

'सब तीर्थंकरों का तप:कर्म निरुपसर्ग कहा गया है और वर्द्धमान का तप:कर्म सोपसर्ग जानना चाहिए।'

इस बारे में मेरा वह खोजपूर्ण लेख देना चाहिए जो अनेकान्त (वर्ष 6 किरण 10–11 पृष्ट 336) में क्या निर्युक्तिकार भद्रबाहु और स्वामी समन्तभद्र एक है?' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ है।

स्तोत्र के प्रारम्भ में भी भगवान् पार्श्वनाथ के स्तवन की प्रतिज्ञा करते हुए उन्हें 'कमठस्मयधूमकेतु:' के नाम से उल्लेखित किया है।

इसके सिवाय स्तोत्र में 'धर्मोपदेशसमये' आदि 19 वें पद्य से लेकर 'उद्योतितेषु भवता' आदि 26 वें पद्य तक 8 पद्यों में उसी तरह 8 प्रातिहार्यों का वर्णन किया गया है जिस प्रकार दिगम्बर भक्तामरस्तोत्र में 28 वें पद्य से लेकर 35वें पद्य तक के 8 पद्यों में उनका वर्णन उपलब्ध है अन्यथा, श्वेताम्बर भक्तामरस्तोत्र की तरह इसमें भी चार ही प्रातिहार्यों (अशोक वृक्ष, पुष्पवर्षा, दिव्यध्वनि और चमर) का कथन होना चाहिये था, किन्तु इसमें उन चार प्रातिहार्यों (सिंहासन, भामण्डल, दुन्दुभि और छत्र) का भी प्रतिपादन है जिनका दिगम्बर भक्तामरस्तोत्र में है और श्वेताम्बर भक्तामरस्तोत्र में नहीं है। अत: इन बातों से इसे दिगम्बर कृति होना चाहिए।

इसके रचयिता कुमुदचन्द्राचार्य का सामान्य अथवा विशेष परिचय क्या है और उनका समय क्या है? इस सम्बन्ध में विद्वानों को विचार एवं खोज करना चाहिये। विक्रम की 12वीं शताब्दी के विद्वान् वादिदेवसूरि की जिन दिगम्बर विद्वान् कुमुदचन्द्राचार्य के साथ 'स्त्रीमुक्ति' आदि विषयों पर शास्त्रार्थ होने की बात कही जाती है, यदि वे ही कुमुदचन्द्राचार्य इस स्तोत्र के रचियता हैं तो इनका समय विक्रम की 12वीं शताब्दी समझना चाहिए।

इति शम्

– दरबारीलाल कोठिया
(न्यायाचार्य) व्याख्याता
हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.)

कल्याण मन्दिर की उत्पत्ति का संक्षिप्त इतिहास

(आज के संसार का स्तर यह है कि उसका बुद्धिवाद सहसा 'चमत्कार' शब्द स्वीकार नहीं करता। करे भी क्यों? चमत्कार का सीधा सम्बन्ध 'श्रद्धा' से है– बुद्धि से नहीं। वह श्रद्धा–जिसे जिनपरिभाषा में सम्यक्त्व कहा जाता है संसार से निरन्तर उठती जा रही है इसीलिये ये पौराणिक चमत्कार किसी समय भले ही इतिहास की जीवित घटनाएँ रही हों– पर आज तो उन पर दन्तकथा ही होने का आरोप किया जाता है।

कल्याण मन्दिर स्तोत्र की उत्पत्ति की पीठिका भी एक ऐसी चमत्कारिक घटना है। जिसे निम्न कहानी में परिलक्षित किया है। यद्यपि इस कहानी से कल्याणमन्दिर के कर्त्ता के सम्पूर्ण जीवन पर प्रकाश नहीं पड़ता तथापि उनके एकदेश जीवन का सम्बन्ध इस कथानक से भलीभाँति प्रकट होता है।)

(1)

ब्रह्ममुहूर्त की बेला है, शिवालयों में शंखनाद और घण्टानाद आरम्भ हो गये हैं। जो कसौटी पर कसे हुए भक्त हैं वही केवल इस शीत में उत्तरीय ओढ़े और अपनी लम्बी चोटी में गांठ लगाये तेजी से नर्मदातट की ओर बढ़े जा रहे हैं। इन्हीं भक्तों में से एक वह है जो नित्यप्रति ''गायत्री मंत्र'' का पाठ करता हुआ आज भी अपनी निराली पगडंडी पर पग बढ़ाये चला जा रहा है।

''अरे जरा दूर से चलो; क्या दिखता नहीं है, कि मैं ब्राह्मण हूँ?'' परन्तु वे तो आचार्य वृद्धवादी जी थे, जो इस कट्टर ब्राह्मण की श्रद्धा की परीक्षा को ही नाम सुनकर निकले थे, अतएव जानबूझकर पुन: घुटनी का धक्का मार ही तो दिया। फिर क्या था? विवाद प्रारम्भ हो गया, जैसा कि आचार्य वृद्धवादी जी चाहते ही थे। वह कट्टर ब्राह्मण वेद पारङ्गत एवं कूटतार्किक था। 'एको ब्रह्म' से लेकर सहस्त्रों श्लोक उसकी जिह्वा पर नाच उठे। आचार्य जी ने भी व्यवहार धर्म का स्वरूप कहा। निदान एक ग्वाला वहाँ से निकला और वही मध्यस्थ ठहराया गया इस अनसुलझे विवाद के लिये।

''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या...।'' आदि कहकर ब्राह्मण ने संस्कृत की अपनी पूर्ण विद्वता सामने उड़ेल दी।

''देखो भाई जैसे आपकी ये गायें हैं, यदि ये कहीं चली जावें तो आपका क्या गया? यदि आप उन्हें अपनी मानते ही नहीं।'' आदि कह कर वृद्धवादी जी ने ग्वाले की बुद्धि के अनुसार ही व्यावहारिक बात करके अपना पक्ष प्रकट किया।

ग्वाले की बुद्धि में संस्कृत श्लोकों की तुलना में अपने ही ऊपर कुछ घटाये व्यावहारिक दृष्टान्तों के कारण शीघ्र ही सब कुछ समझ में आ गया। इस भाँति उसने वृद्धवादी जी का ही समर्थन किया। तथापि ब्राह्मण संतुष्ट नहीं हुआ। होते-होते राजा के पास दोनों पहुँचे और उन्होंने भी आचार्य जी की व्यावहारिकता के कारण उनके ही पक्ष में निर्णय दिया।

निदान ब्राह्मण को उनका शिष्यपना स्वीकार करना ही पड़ा और समयानुसार ये 'कुमुदचन्द्र' नाम से सुसंस्कृत किये गये। ऐसे ही श्रद्धावान्, विद्वान पुरुष की खोज में तो वृद्धवादी जी निकले ही थे।

(2)

आत्मशक्ति का तेज छिपाये छिपता नहीं, यही कारण है कि उज्जयिनी नगरी में रहते हुए यद्यपि इन्हें अधिक समय नहीं हुआ तथापि ख्यातिवैभव इनके चरणों में लोटने लगा और एक दिन वह आया कि वे विक्रमादित्य नरेश के राज्य दरबार के ऐतिहासिक नवरत्नों में से 'क्षपणक' नामक एक उज्ज्वल रत्न बन बैठे। कैसे? उसका भी एक रहस्य है।

पीछे-पीछे प्रजा का विशाल जनसमूह तथा सबसे आगे राजा विक्रमादित्य एक विभूषित मातङ्ग पर आरूढ़ होकर चले जा रहे थे और दूसरी ओर से अपने में लीन, राजकीय आतङ्क से निर्भीक एक निस्पृह साधु। राजा शिवभक्त होकर भी सर्वधर्म समभावी था ही, परीक्षा के हेतु मन ही मन नमस्कार कर लिया, बस क्या था? आत्मा का बेतार के तार का करंट पवित्र आत्मा तक पहुँच गया और 'धर्मवृद्धिरस्तु' का आशीर्वाद अनायास ही उनके मुख से जोर से निकल पड़ा।

(3)

राजकीय कार्य से कुमुदचन्द्र जी को चित्तौड़गढ़ जाना पड़ा, मार्ग में श्री पार्श्वनाथ जी का एक जैन मन्दिर देख कर ज्योंही वे दर्शनार्थ घुसे कि एक स्तम्भ पर उनकी दृष्टि पड़ी। स्तम्भ एक ओर से खुलता भी था। इन्होंने उसे खोलने का उद्योग किया किन्तु सफलता में विलम्ब लगा। निदान उसी पर लिखित गुप्त संकेतानुसार उन्होंने कुछ औषधियों के सहारे उसे खोल लिया तथा उसमें रखे हुए अटूट चमत्कारी शास्त्र देखे। एक पृष्ठ पढ़ने के पश्चात् ज्योंही वे दूसरा पृष्ठ पढ़ने लगे त्योंही अदृश्य वाणी हुई कि दूसरा पृष्ठ तुम्हारे भाग्य में नहीं है और स्तम्भकपाट पुनः पूर्ववत् बन्द हो गया। अस्तु जितना मिला उतना ही क्या कम था जो आगे जाकर कल्याणमन्दिर की भक्तिरस पूर्ण चमत्कार सिद्धि में कारण बना। यह घटना एक ऐसी घटना थी जो अक्सर उनके आत्मस्थैये के समय उनकी आँखों में चित्रपट के समान अंकित हो जाया करती थी।

(4)

महाकालेश्वर का विशाल प्रांगण-जहाँ करोड़ों की संख्या में आज शैव और शाक्त बैठे हैं, नानाप्रकार के वैदिक यौगिक चमत्कारों का जिन्हें गर्व है। वे देखना चाहते हैं कि यह क्षपणक हम से बढ़ियाँ ऐसा कौनसा चमत्कार दिखलाने का दावा कर रहा है, तथाकथित आठों रत्न इसलिये प्रसन्न हैं कि आज उन्हें उनके अपने ही द्वारा पाली हुई ईर्ष्या का साकाररूप देखने का सुयोग प्राप्त हो रहा है। उज्जयिनी नरेश विवेकी और परीक्षाप्रधानी थे। प्रभाविक शक्तियाँ ही उन्हें अपने वश में कर सकती थीं। हाँ, तो दैदीप्यमान चेहरा अपनी ओर बढ़ता देख मानो शिवमूर्ति निस्तेज पड़ने लगी थी। राजा का संकेत पाकर कपिल द्विज बोला-''तो क्षपणक जी करिये न नमस्कार शिवजी को, देखें आपका आत्मवैभव।''

श्रद्धा वास्तव में बलवती होती है, उसके आगे सोचने या विचारने का कोई मूल्य नहीं। बस आचार्य जी की आँखों से वही चित्तौड़गढ़ का भव्य जिनमन्दिर उसमें विराजमान वही सौम्यमूर्ति पार्श्वनाथ जी का बिम्ब, वही स्तम्भ और वही चमत्कारी पृष्ठ उस शिवमूर्ति के स्थान में दिखाई देने लगे। एकाएक उनके मुँह से

भक्ति के आवेश में निम्न श्लोक निकल पड़ा–

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षतोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दुःखपात्रं,
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।।

कल्याणमन्दिर श्लोक नं. 38

इन भक्तिरस पूर्ण पंक्तियों में कहिये अथवा आचार्य श्री के उस पौद्गलिक वाणी में कहिये, कौन से ऐसे तत्त्व भरे थे, जिन्होंने कि उस समस्त विशाल जनसमूह को एक वारगी ही मन्त्रमुग्ध सा कर लिया। सब के नेत्र उसी एक व्यक्ति पर ही गड़े थे, उस मूर्ति की ओर कोई नहीं देखता था, जिसका कि एक–एक परमाणु वीतराग मुद्रा में परिणत होने लग गया था। हाँ, समुदाय के चर्मचक्षु तो उस समय उस ओर मुड़े जबकि सर्वांग पूर्ण मुद्रा के प्रकाश पुञ्ज की तेज रश्मियाँ उनके पलकों में जा भिड़ी और फिर दाँतों तले अंगुली दबाने के सिवाय उन्हें रह ही क्या गया था, जो कि वास्तव में दयनीय था।

परिणाम यह हुआ कि राजा समेत सभी उपस्थित जनता तत्काल समीचीन जैन–धर्म की अनुयायिनी हो गई। ओंकारेश्वर का विशाल महाकालेश्वर का मन्दिर इसका ज्वलन्त प्रतीक है।

समयानुसार राजा की प्रेरणा पाकर भी श्री कुमुदचन्द्राचार्य जी ने भक्तिरस से ओतप्रोत इस कलापूर्ण अद्वितीय चमत्कारी कल्याणमन्दिर स्तोत्र की रचना कर जन साधारण का महान कल्याण किया।

*****

अखण्ड पाठ विधि

आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए यह आवश्यक है कि परमात्मा के पवित्र गुणों का बारम्बार चिन्तन, मनन व स्तवन कर उन्हें अपने आत्मा में व्यक्त और विकसित करने का प्रयास किया जावे।

इसी आन्तरिक भावना से कल्याण मन्दिर स्तवन द्वारा परमात्मा की आराधना से आत्मविकास की परिपाटी जैन सम्प्रदाय में शताब्दियों से प्रचलित है।

जगद्धितैषी, वीतराग सर्वज्ञ जिनेश के समक्ष कल्याण मन्दिर के ''अखण्ड पाठ'' का क्रम व विधि इस प्रकार है।

पाठ प्रारम्भ होने के एक दिन पहिले एक बड़े तख्त पर पंचवर्ण तन्दुलों से इसी पुस्तक में अंकित मण्डल (मांडना) बनाया जाय।

दूसरे दिन प्रातः स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहिनकर पूजन सामग्री तैयार कर माड़ने के ऊपर (प्रारम्भ में) उत्तर या पूर्व मुख उच्चासन पर सुन्दर सिंहासन में श्री जिनेन्द्र भगवान की बड़ी और मझौल दो मूर्तियाँ तथा सामने एक उच्चासन पर श्री विनायक (सिद्ध) यन्त्र स्थापित किया जावे। पश्चात् मंगल और शोभा के हेतु अष्ट मंगल द्रव्य, छत्रत्रय और अष्टप्रातिहार्य यथास्थान स्थापित किये जावें।

सिंहासन से कुछ नीचे एक छोटे वाजौटे पर प्रतिमा की दायीं ओर एक अखण्ड दीपक (जो कार्य समाप्ति पर्यन्त बराबर जलता रहे) प्रज्वलित किया जावे। पश्चात् वादित्रनाद हो चुकने के अनन्तर उपस्थित सभी जनता उच्चस्वर से 'जैनधर्म की जय' आदिनाथ भगवान की जय 'भगवान पार्श्वनाथ की जय' कल्याणमन्दिर विधान की जय, बोलें। पश्चात् पद्यान्त में पुष्पप्रक्षेप करते हुए मंगलाचरण वा मंगलाष्टक पढ़ा जावे।

मंगलकलश में हल्दी, सुपारी, अक्षत, नकद 1 रखकर ऊपर सीधा श्रीफल रखकर पीतवस्त्र और पंचवर्ण सूत से उसे सुन्दर रीति से बाँधना चाहिये। यह मंगलकलश प्रतिमा की बाँई ओर एक छोटे चौके पर स्थापित करना चाहिए।

तदनन्तर दिग्बन्धन, परिणामविशुद्धि, रक्षासूत्रबन्धन, तिलककरण, अंगशुद्धि और रक्षा–विधान करना चाहिये।

विधिपूर्वक जलधारा (अभिषेक) और शान्तिधारा कर नित्य नियम पूजन के पश्चात् 24, 48 या 72 घंटे तक 'अखण्ड पाठ' करने का संकल्प कर जयध्वनिपूर्वक कल्याण मन्दिर स्तोत्र का पाठ प्रारम्भ करना चाहिये।

यह अखण्ड पाठ प्रतिमा के सामने बैठकर समान स्वर में एकस्थल पर अनेक व्यक्ति संकल्पित समय तक करें। यदि बीच में पाठकर्ता बदले जावें तो जब तक नवीन पाठकर्ता पाठ-प्रारम्भ न कर दे तब तक पूर्व पाठकर्ता अपना स्थान नहीं छोड़ें।

संकल्पित समय पर पूरा होने पर मंगलाष्टक तथा शान्तिपाठ पढ़ कर चौकी पाटे उठाकर उचित स्थान पर टेबिल जमाकर पुन: भगवान का अभिषेक एवं यन्त्र की शान्तिधारा की जाय।

तत्पश्चात् विधिपूर्वक नित्यपूजा कर कल्याण मन्दिर पूजा (विधान) किया जावे। पूजन समाप्ति के बाद शान्तिकलशाभिषेक (पुण्याहवाचन) शान्ति-विसर्जन, आरती, परिक्रमा वगैरह यथाविधि किये जावें। यदि पाठ के साथ जाप्य भी किया गया हो तो विधिपूर्वक हवन भी किया जावें। अगर सामान्य रीति से पाठ करना हों तो मंगल कलश या विनायक यंत्र पार्श्वनाथ की तस्वीर रखकर मंगल पाठ पढ़कर क्षमतानुसार समय का निर्धारण कर दीप प्रज्ज्वलित कर पाठ प्रारंभ कर सकते हैं।

आवश्यक सामग्री

हल्दीगाँठ, सुपारी, श्रीफल, पीलेसरसों, पीतवस्त्र, शुद्ध घृत, रूई, दीपक, माचिस, अगरबत्ती, लवंग, शुद्ध धूप, धूपदान, फूलमालाएँ, नकद रुपया, मंगल कलश, चौकी, पाटे, आसनी, दीपक बड़े, दीपक छोटे, कंडील, अष्टद्रव्य, नवीन धोती दुपट्टे, छन्ना, अँगौछी, रूमाल, पञ्चवर्ण चावल, तखत, अष्ट-मंगलद्रव्य, अष्टप्रातिहार्य, छत्रत्रय, पाठ की पुस्तकें।

व्रत विधि

कल्याण मन्दिर व्रत रखना चाहें तो 44 रविवार तक एकासन या उपवास या यथाशक्ति रस त्याग के साथ वैशाख पौष चैत्रमाह के कृष्ण पक्ष में या श्रावण भाद्र कार्तिक माघ माह के शुक्लपक्ष में प्रारंभ करें अगर कृष्ण या शुक्ल पक्ष में 2/4/7/11 को रविवार आये तो अति उत्तम हैं व्रत समापन पर अखण्डपाठ वृहद् विधान 44 जोड़ों के साथ करायें या यथाशक्ति पूजन भक्ति करें। व्रत के अवसर पर ब्रह्मचर्य से रहे अभक्ष्य भक्षण से बचें और **ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय सर्वसौख्यं कुरू कुरू नमः** की कम से कम 1 अधिकतम 23 माला फेरें या 3/5/7/9 इस क्रम से जाप करें।

मांडना

मंगलाष्टक

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र महिता: सिद्धाश्च सिद्धीश्वरा:,
आचार्या जिनशासनोन् नति–करा: पूज्या उपाध्यायका:।
श्रीसिद्धान्त–सुपाठका मुनिवरा: रत्नत्रया–राधका:,
पञ्चैते परमेष्ठिन: प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मंगलम्।।1।।

श्रीमन् नम्र–सुरा–सुरेन्द्र–मुकुट– प्रद्योत–रत्नप्रभा,
भास्वत्–पाद–नखेन्–दव: प्रवचनाम्– भोधीन्दव: स्थायिन:।
ये सर्वे जिन–सिद्ध–सूर्यनुगतास् ते पाठका: साधव:,
स्तुत्या योगिजनैश् च पञ्च गुरव:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।2।।

सम्यग्दर्शन – बोध – वृत्त – ममलं, रत्नत्रयं पावनं,
मुक्तिश्री नगराधि–नाथ–जिनपत्,–युक्तोऽपवर्गप्रद:।
धर्म: सूक्ति–सुधा च चैत्यमखिलं, चैत्यालय: श्रयालय:,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विध–ममी, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।3।।

नाभेयादि जिना: प्रशस्त–वदना:,ख्याताश् चतुर्विंशतिश्,
श्रीमन्तो भरतेश्वर–प्रभृतयो, ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु–प्रतिविष्णु–लांगल–धरा:, सप्तोत्तरा विंशतिस्,
त्रैकाल्ये प्रथितास् त्रिषष्टि–पुरुषा:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।4।।

ये सर्वौषधि–ऋद्धय: सुतपसां, वृद्धिंगता: पञ्च ये,
ये चाष्टांग–महा–निमित्त–कुशलाश्, चाष्टौ वियच्चारिण:।
पञ्चज्ञान–धरास् त्रयोऽपि बलिनो, ये बुद्धिऋद्धीश्वरा:,
सप्तैते सकलार्चिता मुनीवरा:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।5।।

ज्योति–र्व्यन्तर–भावनामरगृहे, मेरौ कुलाद्रौ स्थिता:,
जम्बूशाल्मलि–चैत्य–शाखिषु तथा, वक्षाररूप्याद्रिषु।
इष्वाकार–गिरौ च कुण्डल–नगे, द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहा:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।6।।

कैलासे वृषभस्य निर्वृति–मही, वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपते:, सम्मेद–शैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे, नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनय: प्रसिद्ध–विभवा:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।7।।

सर्पोहार–लता भवत्यसिलता, सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि–, प्रीतिं विधत्ते रिपु:।
देवा यान्ति वशं प्रसन्न मनस:, किं वा बहुब्रूमहे,
धर्मादेव–नभोऽपि वर्षति नगै:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।8।।

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां, जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जात: परिनिष्क्रमेण विभवो, य: केवलज्ञान–भाक्।
य: कैवल्य–पुर–प्रवेश–महिमा, सम्पादित: स्वर्गिभि:,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।9।।

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं, सौभाग्य–सम्पत्करम्,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्, तीर्थंकराणामुष:।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश् च सुजनैर्धर्मार्थ–कामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय–रहिता, निर्वाण–लक्ष्मीरपि।।10।।

।। इति श्री मंगलाष्टक–स्तोत्रम् ।।

जल शुद्धि मंत्र – ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्र: नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पद्म–महापद्म–तिगिंछ –केसरी–पुण्डरीक–महापुण्डरीक–गंगासिन्धु–रोहिद्–द्रोहितास्या–हरिद्–धरिकान्ता–सीतासीतोदा–नारी–नरकान्ता–सुवर्णकूला–रूप्यकूला–रक्ता–रक्तोदा–क्षीराम्भोनिधि–शुद्धजलं सुवर्णघटं प्रक्षालित–परिपूरितं नवरत्न–गंधाक्षत–पुष्पार्चितं ममोदकं पवित्रं कुरु कुरु झं झं झौं झौं वं वं मं मं हं हं क्षं क्षं लं लं पं पं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं स: स्वाहा।

हस्त–प्रक्षालन मंत्र – ॐ ह्रीं असुजर सुजर भव स्वाहा हस्त प्रक्षालनं करोमि।

अमृत स्नान मंत्र – ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षणि अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय सं हं झ्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

तिलक करण मन्त्र

पात्रेऽर्पितं चन्दनमौषधीशं, शुभ्रं सुगन्धाहृत–चञ्चरीकम्।
स्थाने नवांके तिलकाय चर्च्यं, न केवलं देहविकारहेतोः।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः मम यजमानस्य सर्वांगशुद्धि हेतवः नवतिलकं करोम्यहम्।

तिलक के नवस्थान – 1. शिखा, 2. मस्तक, 3. ग्रीवा, 4. हृदय, 5. दोनों भुजायें, 6. पीठ, 7. कान, 8. नाभि, 9. कलाई।

दिग्बन्धन

पूर्वदिशा में – ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां पूर्वदिशा–समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय माम् एतान् सर्व रक्ष रक्ष स्वाहा।

आग्नेयदिशा में – ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं आग्नेयदिशा–समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय माम् एतान् सर्व रक्ष रक्ष स्वाहा।

दक्षिणदिशा में – ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ह्रूं दक्षिणदिशा–समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय माम् एतान् सर्व रक्ष रक्ष स्वाहा।

नैऋत्यदिशा में – ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं नैऋत्यदिशा–समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय माम् एतान् सर्व रक्ष रक्ष स्वाहा।

पश्चिमदिशा में – ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः पश्चिमदिशा–समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय माम् एतान् सर्व रक्ष रक्ष स्वाहा।

वायव्यदिशा में – ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां वायव्य दिशा–समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय माम् एतान् सर्व रक्ष रक्ष स्वाहा।

उत्तरदिशा में – ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं उत्तरदिशा–समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय माम् एतान् सर्व रक्ष रक्ष स्वाहा।

ऐशानदिशा में – ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ह्रूं ऐशानदिशा–समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय माम् एतान् सर्व रक्ष रक्ष स्वाहा।

अधोदिशा में – ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं अधोदिशा–समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय माम् एतान् सर्व रक्ष रक्ष स्वाहा।

ऊर्ध्वदिशा में – ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः ऊर्ध्वदिशा–समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय माम् एतान् सर्व रक्ष रक्ष स्वाहा।

सर्वदिशा में – ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः णमो अरिहंताणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्वदिशा–समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय माम् एतान् सर्व रक्ष रक्ष स्वाहा।

सर्वदिशा में रक्षामंत्र –ॐ ह्रूं क्ष्रूं फट् किरिटि, किरिटि घातय घातय, परविघ्नान् स्फोटय स्फोटय, सहस्रखण्डान् कुरु कुरु, परमुद्रां छिन्द छिन्द, परमंत्रान् भिन्द भिन्द, क्षां क्षः वाः वाः ह्रूं फट् स्वाहा।

सर्वदिशा में शान्तिमंत्र –ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोष–कल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्री शान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वपाप–प्रणाशनाय सर्वविघ्नविनाशनाय सर्वरोगापमृत्यु–विनाशनाय सर्वपरकृत–क्षुद्रोपद्रव–विनाशनाय सर्वक्षामडामर–विनाशनाय सर्वारिष्ट–शान्तिकराय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः माम् सर्वशान्तिं कुरु कुरु तुष्टिं पुष्टिं च कुरु कुरु स्वाहा।

पात्र अंगशुद्धि मंत्र –

शोधये सर्व–पात्राणि, पूजार्था–नपि वारिभिः।
समाहितो यथाम्नाय, करोमि सकलीक्रियाम्।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते श्रीमते पवित्रतर–जलेन पात्रशुद्धिं करोमि स्वाहा।

क्षेत्रआज्ञा एवं भूमिशुद्धि मंत्र – ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्र: जिनगर्भगृह-क्षेत्रे धरित्री जाग्रतावस्थायां कुरु कुरु स्वाहा।

भूमिशुद्धि मंत्र –

ओं शोधयामि भूभागं, जिनधर्माभि रुत्सवे।
काल-धौतोज्ज्वल-स्थूल, कलशापूर्ण वारिणि।।

ॐ ह्रीं नम: सर्वज्ञाय सर्वलोकनाथाय धर्मतीर्थनाथाय परम-पवित्रेभ्य: शुद्धेभ्य: नम: पवित्र-जलेन भूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा।

दाहिने हाथ में रक्षासूत्र बाँधने का मंत्र – ॐ नमोऽर्हते सर्वं रक्ष रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा।

यज्ञोपवीतधारण मंत्र – ॐ नम: परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकरणाय अहं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नम: स्वाहा।

मंगल कलश में सुपाडी आदि डालने का मंत्र – ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नम: मंगल कलशे पूंगादि फलादि प्रभृति वस्तूनि प्रक्षिपामीति इति स्वाहा।

मंगल कलश के ऊपर श्री फल रखने का मंत्र – ॐ क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षों क्षौं क्ष: नमोऽर्हते भगवते श्रीमते सर्व रक्ष रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा।

मंगल कलश-स्थापन मन्त्र

ॐ श्रीमत् अर्हत् परमेश्वरोप-दिष्ट शिष्टेष्टदयामूल-धर्मप्रभावक-यष्ट-याजक-प्रभृति-भव्यजनानां सद्धर्म श्री बलायुरारोग्यैश्वर्याभि-वृद्धिरस्तु। श्रीमज्जिनशासने भगवतो महति महावीर-वर्द्धमान-तीर्थंकरस्य धर्मतीर्थे श्रीमूलसंघे कुन्दकुन्दाम्नाये मध्यलोके जम्बूद्वीपे सुदर्शन-मेरोर्दक्षिण-भागे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारतदेशे... नगरे विविधालंकार-मंडित-यज्ञमण्डपे हुण्डावसर्पिणी काले दु:खं नाम्नि पंचमकालयुगे प्रवर्त्तमाने वीरनिर्वाण...

संवत्सरे मासोत्तममासे... पक्षे...तिथौ...वासरे...जिनप्रतिमाया: सन्निधौ दिगम्बर-जैनाचार्य-श्री आदि-महावीर-विमल-सन्मति-विराग-विमर्शसागर परम्परायां मुनि-आर्यिका-श्रावक-श्राविकादि-चतुर्विध-संघसन्निधौ।... विधानोत्सवे निर्विघ्न-समाप्त्यर्थं सकलाभ्युदय नि:श्रेयस सिद्ध्यर्थं शुद्ध्यर्थं द्रव्य शुद्ध्यर्थं याज्ञ शुद्ध्यर्थं क्रिया-शुद्ध्यर्थं, शान्त्यर्थं पुण्याहवाचनार्थं नवरत्नगन्ध-पुष्पाक्षतादि-बीजपूरशोभित-शुद्धप्रासुक-जलपरिपूरित-मंगलकुम्भं मण्डपाग्रे स्वस्त्यै स्थापनं करोमि झं क्ष्वीं हं स: स्वाहा।

नोट – यह पढ़कर मण्डल के पूर्व-उत्तर कोने में जल, अक्षत, पुष्प, हल्दी, सुपारी, सवा रुपया, श्रीफल और पुष्पमाला सहित मंगलकलश श्रावक द्वारा स्थापित कराया जावे। इस कलश को पुण्याहवाचन कलश भी कहते हैं।

चारों कोनों पर कलश स्थापना का मंत्र –

ॐ आद्यानामाद्ये जम्बूद्वीपे-मेरोर्दक्षिणभागे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारतदेशे...प्रान्ते...नगरे.....जिनप्रतिमाया: सन्निधौ। ....विधानोत्सवे वीरनिर्वाण... संवत्सरे मासोत्तमसासे..... पक्षे..... तिथौ.... वासरे... विधानकार्यस्य निर्विघ्न-समाप्त्यर्थं मण्डप भूमि शुद्ध्यर्थं पात्र शुद्ध्यर्थं क्रिया-शुद्ध्यर्थं, शान्त्यर्थं पुण्याहवाचनार्थं नवरत्नगन्धपुष्पाक्षतादि-बीजपूरादिशोभितम्...यजमानस्य हस्ताभ्यां मंगलकलश-स्थापनं करोमि इ्वीं क्ष्वीं हं स: मंगलं भवतु स्वाहा। ॐ ह्रीं स्वस्तये पुण्यकुम्भं स्थापयामि स्वाहा।

नांदीकुम्भ को सूत्र से बाँधने का मंत्र – ॐ नमो भगवते अ सि आ उ सा ऐं ह्रीं ह्रां ह्रीं संवौषट् त्रिवर्णसूत्रेण शान्तिकुभं वेष्टयामि।

चारों विदिशाओं में धूपघट स्थापन मंत्र – ॐ ह्रीं अष्टकर्म-भस्मीकरणाय सर्वदिग्वात-सुगंधिकरणाय दशांग-धूपक्षेपणार्थं ईशान-आग्नेय-नैऋत्य-वायव्य-कोणे धूपघटस्थापनं करोमि स्वाहा।

दीप स्थापना मंत्र–

रुचिरदीप्तिकरं शुभदीपकं, सकललोक–सुखाकर–मुज्ज्वलम्।
तिमिर जाल हरं प्रकरं सदा, किल धरामि सुमंगलकं मुदा।।

ॐ ह्रीं अज्ञान तिमिर हरं दीपकं स्थापयामीति स्वाहा।

सकलीकरण मन्त्र

(अंगुलियों में पंचपरमेष्ठी की स्थापना करें)

ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः।
ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं अनामिकाभ्यां नमः।
ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः करतलाभ्यां नमः।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः करपृष्ठाभ्यां नमः।

तदनन्तर–

अंग शुद्धि (दोनों हाथों से अंग स्पर्श करें)

ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां मम शीर्षं रक्ष रक्ष स्वाहा।
(यह मंत्र पढ़कर दाहिने हाथ से सिर का स्पर्श करें।)
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं मम वदनं रक्ष रक्ष स्वाहा।
(यह मंत्र पढ़कर दाहिने हाथ से मुख का स्पर्श करें।)
ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ह्रूं मम हृदयं रक्ष रक्ष स्वाहा।
(यह मंत्र पढ़कर दाहिने हाथ से हृदय का स्पर्श करें।)
ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं मम नाभिं रक्ष रक्ष स्वाहा।
(यह मंत्र पढ़कर दाहिने हाथ से नाभि का स्पर्श करें।)
ॐ ह्रः णमो लोए सव्व साहूणं ह्रः मम पादौ रक्ष रक्ष स्वाहा।
(यह मंत्र पढ़कर दाहिने हाथ से पैरों का स्पर्श करें।)

ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां माम् रक्ष रक्ष स्वाहा।
(यह मंत्र पढ़कर अपने शरीर का स्पर्श करें।)
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं मम वस्त्रं रक्ष रक्ष स्वाहा।
(यह मंत्र पढ़कर अपने वस्त्रों का स्पर्श करें।)
ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ह्रूं मम पूजाद्रव्यं रक्ष रक्ष स्वाहा।
(यह मंत्र पढ़कर अपनी पूजन थाली का स्पर्श करें।)
ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं मम स्थलं रक्ष रक्ष स्वाहा।
(यह मंत्र पढ़कर अपने खड़े होने की जगह की ओर देखें।)
ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः सर्व जगत् रक्ष रक्ष स्वाहा।
(यह मंत्र पढ़कर चुल्लू में जल लेकर सब ओर क्षेपण करें।)

नोट – इस तरह सकलीकरण से अपने शरीर को कवच पहनाकर सम्पूर्ण इष्ट–पूजादि मंत्रादि को करते हुए पूजक विघ्न–बाधित नहीं होता है।

सिद्धयन्त्र स्थापना मन्त्र

मध्ये तेजः ततः स्याद्, वलय–मथ–धनुः, संख्य–कोष्ठेषु पञ्च,
पूज्यान् संस्थाप्य वृते, तत उपरि–तने, द्वा–दशाम्भो–रुहाणि।
तत्र स्यु–मंगला, न्युत्तम–शरण–पदान्, पञ्च–पूज्या–मर्षीन्,
धर्म–प्रख्याति भाजः, त्रि–भुवन–पतिना, वेष्ठयेदं कुशाढ्याम्।।

ॐ ह्रीं स्नपनपीठे विनायक/सिद्धयंत्रं स्थापनं करोमि स्वाहा।

चारों कोनों पर चार कलश स्थापना मंत्र– ॐ ह्रीं चतुष्कोणेषु चतुःकलशस्थापनं करोमि।

सिद्धयन्त्राभिषेक मन्त्र

स्नात्वा शुभाम्बर–धरः कृत–यत्न–योगात्,
यन्त्रं निवेश्य शुचि–पीठ–वरेऽभि–षिञ्चेत्।
ॐ भूर्भुवः स्व–रिह मंगल–यन्त्र–मेतत्,
विघ्नौद्य–वारक–महं परि–षेचयामि।।

ॐ भूर्भुवः स्वरिह विघ्नौघवारकं यन्त्रं वयं परिषेचयामः।

सिद्धभक्ति

असरीरा जीवघणा, उवजुत्ता दंसणे य णाणे य।
सायार–मणायारा, लक्खणमेयं तु सिद्धाणं।।1।।
मूलोत्तर–पयडीणं, बंधोदयसत्त–कम्म–उम्मुक्का।
मंगलभूदा सिद्धा, अट्ठगुणा तीदसंसारा।।2।।
अट्ठ–वियकम्म वियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।3।।
सिद्धा–णट्ठट्ठ–मला, विसुद्ध बुद्धीय लद्धि सब्भावा।
तिहुअण सिरसे हरया, पसियंतु भडारया सव्वे।।4।।
गमणागमण–विमुक्के, विहडिय–कम्म–पयडि संघारा।
सासह सुह संपत्ते, ते सिद्धा वंदिमो णिच्चं।।5।।
जय मंगल–भूदाणं, विमलाणं णाणदंसणमयाणं।
तइलोइसेहराणं, णमो सदा सव्व–सिद्धाणं।।6।।
सम्मत्त–णाण–दंसण–वीरिय–सुहुमं तहेव अवग्गहणं।
अगुरु–लघु–मव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।7।।
तव सिद्धे णय–सिद्धे संजम–सिद्धे चरित्त–सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि।।8।।

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण–सम्मदंसण–सम्मचरित्त–जुत्ताणं, अट्ठविहकम्म–विप्प–मुक्काणं, अट्ठगुण–संपण्णाणं, उड्ढलोय–मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्त–सिद्धाणं, अतीदा–णागद–वट्टमाण–कालत्तय–सिद्धाणं, सव्व–सिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुण–संपत्ति होउ मज्झं।

लघु अभिषेक पाठ

शोधये सर्वपात्राणि, पूजार्थानपि वारिभिः।
समाहितो यथाम्नाय, करोमि सकली क्रियाम्।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा पवित्रतर जलेन शुद्धिं करोमीति स्वाहा।

(जल से शुद्धि करें)

श्रीमज्जिनेन्द्र – मभिवन्द्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वादनायक – मनन्त चतुष्टयार्हम्।
श्री मूलसंघ – सुदृशां सुकृतैक हेतुर्,
जैनेन्द्र यज्ञ विधिरेष मयाभ्यधायि।।1।।

ॐ ह्रीं अभिषेक प्रतिज्ञायां पुष्पांजलिं क्षिपामि।

सौगन्ध्य–संङ्गत–मधुव्रत झङ्कृतेन,
सम्वर्ण्य–मानमिव गन्धमनिन्द्य–मादौ।
आरोपयामि विबुधेश्वर–वृन्द–वन्द्य–
पादारविन्द–मभिवन्द्य जिनोत्तमानाम्।।2।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः मम सर्वांग शुद्धिं कुरु कुरु।

(यह पढ़कर चंदन से तिलक लगाना व हाथ धोना)

ये सन्ति केचिदिह दिव्य–कुल–प्रसूताः,
नागाः प्रभूत बल–दर्पयुता विबोधाः।
संरक्षणार्थ–ममृतेन शुभेन तेषां,
प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम्।।3।।

ॐ ह्रीं जलेनभूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा।

(यह पढ़कर भूमि शुद्धि करें)

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः,
प्रक्षालितं सुरवरै – र्यदनेकवारम्।

अत्युद्य–मुद्यत–महं जिनपाद पीठं,
प्रक्षालयामि भव–सम्भव–तापहारि।।4।।

ॐ ह्रीं श्रीमते पवित्रतर जलेन पीठ प्रक्षालनं करोमि स्वाहा।

(जिसमें प्रतिमा विराजमान करना है उस थाली को धोवें)

श्री शारदा–सुमुख–निर्गत बीजवर्ण,
श्री मंङ्गलीक–वर–सर्व जनस्य नित्यम्।
श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाशविघ्नं,
श्रीकार–वर्ण–लिखितं जिन भद्रपीठे।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीकार लेखनं करोमि।

(जिसमें प्रतिमा विराजमान करना है उस थाली में 'श्री' लिखें)

यं पाण्डुकामल–शिलागतमादिदेव–
मस्ना – पयन्सुरवरा: सुरशैलमूर्ध्नि।
कल्याण–मीप्सुरह–मक्षत तोय पुष्पै:।
सम्भावयामि पुर एव तदीय–बिम्बम्।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्रीवर्णे प्रतिमा स्थापनम् करोमि स्वाहा।

(यह पढ़कर श्रीवर्ण पर प्रतिमा स्थापन करना चाहिए)

सत्पल्लवार्चित–मुखान्–कलधौतरौप्य –
ताम्रारकूट – घटितान्पयसा सुपूर्णान्।
सम्वाह्यतामिव गतांश्चतुर: समुद्रान्,
संस्थापयामि कलशाज्जिन वेदिकान्ते।।7।।

ॐ ह्रीं स्वस्तये चतु:कोणेषु कलश स्थापनं करोमि स्वाहा।

उदक–चंदन–तंदुल–पुष्पकैश्चरु–सुदीप–सुधूप–फलार्घकै:।
धवल मंगल गान–रवाकुले, जिनगृहे जिननाथ–महं यजे।।

ॐ ह्रीं श्री परमदेवाय अर्हत् परमेष्ठिने अर्घ्यं निर्व. स्वाहा

दूरावनम्र सुरनाथ–किरीट–कोटी–
संलग्न–रत्न–किरणच्छवि–धूसराङ्घ्रिम्।
प्रस्वेद–ताप–मल–मुक्तिमपि प्रकृष्टैर्,
भक्त्या जलैर्जिनपतिं, बहुधाभिषिञ्चे।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकर परं देवं आद्यानामाद्ये–मध्यलोके–जम्बूद्वीपे–भरतक्षेत्रे–आर्य खण्डे–भारतदेशे...प्रदेशे...जिले...मासे...पक्षे...वासरे शुभदिने पौर्वाह्णिक समये मुन्यार्यिका श्रावक–श्राविकानां सकल कर्म क्षयार्थं जलेनाभिषिञ्चे नम:।

(मुनि, आर्यिका, श्रावक–श्राविका जो तीर्थंकर भगवान के ऊपर जल की धारा देवें, देखें ताके कर्मन की क्षय।)

उदक–चंदन–तंदुल–पुष्पकैश्चरु–सुदीप–सुधूप–फलार्घकै:।
धवल मंगल गान–रवाकुले, जिनगृहे–जिननाथ मह यजे।।

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्यो अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

इष्टैर्मनोरथ–शतैरिव भव्य पुंसां,
पूर्णै: सुवर्ण कलशै–र्निखले–र्वसानै:।
संसार सागर–विलंघन, हेतु–सेतु–
माप्लावये त्रिभुवनैक–पतिं जिनेन्द्रम्।।9।।

(यहाँ चारों कलश से अभिषेक करें)

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकर परं देवं आद्यानामाद्ये–मध्यलोके–जम्बूद्वीपे–भरतक्षेत्रे–आर्य खण्डे–भारतदेशे...प्रदेशे...जिले...मासे...पक्षे...वासरे शुभदिने पौर्वाह्णिक समये मुन्यार्यिका श्रावक–श्राविकानां सकल कर्म क्षयार्थं जलेनाभिषिञ्चे नम:।

(मुनि, आर्यिका, श्रावक–श्राविका जो तीर्थंकर भगवान के ऊपर जल की धारा देवें, देखें ताके कर्मन की क्षय।)

पानीय – चंदन – सदक्षत – पुष्प पुंज,
नैवेद्य – दीपक – सुधूप – फल व्रजेन।
कर्माष्टकं कथन वीर – मनंत शक्तिं,
संपूजयामि महसा महसां निधानम्।।

ॐ ह्रीं अभिषेकान्तेश्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नत्वा – मुहुर्निज करै – रमृतोपमेयै:,
स्वच्छै – र्जिनेन्द्र तव चन्द्र करावदातै:।
शुद्धांशुकेन विमलेन नितांतरम्ये,
देहे स्थितान् जलकणान् परिमार्जयामि।।

ॐ ह्रीं अमलांशुकेनजिनबिम्ब मार्जनं करोमि।

उदक–चंदन–तंदुल–पुष्पकैश्चरु–सुदीप–सुधूप–फलार्घकै:।
धवल मंगल गान–रवाकुले, जिनगृहे जिननाथ–महंयजे।।

ॐ ह्रीं सिंहासन स्थित अर्हत् देवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इतिश्री लघुअभिषेक पाठ)

लघु शान्तिधारा

ॐ नम: सिद्धेभ्य:। श्री वीतरागाय नम:। ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्री पार्श्वतीर्थंकराय द्वादशगण–परिवेष्टिताय, शुक्लध्यान–पवित्राय, सर्वज्ञाय, स्वयम्भुवे, सिद्धाय, बुद्धाय, परमात्मने परमसुखाय त्रैलोक्य–मही व्याप्ताय अनन्त–संसार–चक्रपरिमर्दनाय, अनन्त–दर्शनाय, अनन्त–ज्ञानाय, अनन्त वीर्याय, अनन्त–सुखाय, सिद्धाय, बुद्धाय, त्रैलोक्यवशंकराय सत्यज्ञानाय सत्यब्रह्मणे, धरणेन्द्र–फणामण्डल–मण्डिताय ऋष्यार्यिका–श्रावक–श्राविका–प्रमुख–चतुस्संघोपसर्ग–विनाशनाय घातिकर्मविनाशनाय अघातिकर्मविनाशनाय (शान्तिधारा कर्ता का नाम) **अपवादं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **मृत्युं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **अतिकामं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि।

रतिकामं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **बलिकामं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **क्रोधं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **अग्निभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वशत्रुभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वोपसर्गं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वविघ्नं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वराज्यभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वचोरभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वदुष्टभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वमृगभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वपरमंत्रं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वशूलरोगं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वक्षयरोगं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वकुष्ठरोगं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वक्रूररोगं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वनरमारिं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वगजमारिं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व–अश्वमारिं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वगोमारिं**–छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व महिषमारिं**–छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वधान्यमारिं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्ववृक्षमारिं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वगुल्ममारिं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वपुष्पमारिं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वफलमारिं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वराष्ट्रमारिं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वदेशमारिं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वविषमारिं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्ववेताल शाकिनी भयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वमोहनीयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व वेदनीयं**–छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वकर्माष्टकं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि।

ॐ सुदर्शन–महाराज–चक्रविक्रम–सत्त्व–तेजोबल–शौर्यवीर्यशान्तिं कुरु कुरु। **सर्वजीवानन्दनं** कुरु कुरु। **सर्वभव्यानंदनं** कुरु कुरु। **सर्वगोकुलानंदनं** कुरु कुरु। **सर्वराजानंदनं** कुरु कुरु। **सर्वग्राम–नगर–खेट–कर्वट–मटम्ब–पत्तण–द्रोणमुख–संवाहनानंदनं** कुरु कुरु। **सर्वलोकानंदन** कुरु कुरु।

सर्वदेशानंदनं कुरु कुरु। **सर्वयजमानानंदनं** कुरु कुरु। **सर्वं दुःखं** हन हन दह दह पच पच कुट कुट शीघ्रं शीघ्रं।

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु, व्याधिर्व्यसनवर्जितम्।
अभयं क्षेममारोग्यं, स्वस्तिरस्तु विधीयते।।

शिवमस्तु, कुलगोत्र-धन धान्य सदास्तु। चन्द्रप्रभ-वासुपूज्य-मल्लि-वर्द्धमान-पुष्पदंत-शीतल-मुनिसुव्रत-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ इत्येभ्यो नमः।

(इत्यनेन मन्त्रेण नवग्रहाणां शान्त्यर्थं गन्धोदक-धारावर्षणम्।)

श्री शान्तिरस्तु। शिवमस्तु। जयोस्तु। नित्यमारोग्यमस्तु। सर्वेषां पुष्टिरस्तु। तुष्टिरस्तु, समृद्धिरस्तु। कल्याणमस्तु। सुखमस्तु। दीर्घायुरस्तु, कुलगोत्र धनधान्यं सदास्तु, श्री सर्द्धम-बल-आयु-आरोग्य-ऐश्वर्य अभिवृद्धिरस्तु।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सम्पूर्ण कल्याणमंगलरूप मोक्ष पुरुषार्थश्च भवतुः।

ॐ नमोऽर्हते भगवतेश्रीमते प्रक्षीणाशेष दोष कल्मषाय दिव्यतेजो मूर्तये श्री शांतिनाथाय शांतिकराय सर्वविघ्न प्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्यु विनाशनाय सर्व परकृत क्षुद्रोपद्रव विनाशनाय सर्व क्षाम-डामर विनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः सर्व देशस्य चतुर्विध संघस्य तथैव सर्वविश्वस्य तथैव मम (शांति धारा कर्ता का नाम) सर्वशांतिं कुरु कुरु, तुष्टिं कुरु कुरु, पुष्टिं कुरु कुरु वषट् स्वाहा।

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः।।

(इति लघुशान्तिधारा)

विनय पाठ

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ।।1।।
अनंत चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सिरताज।
मुक्तिवधु के कंत तुम, तीन भुवन के राज।।2।।
तिहुँ जग की पीड़ा हरन, भवदधि-शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिव-सुख के करतार।।3।।
हरता अघ अंधियार के, करता धर्म-प्रकाश।
थिरता-पद दातार हो, धरता निज गुण रास।।4।।
धर्मामृत उर जलधि सों, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुँजग भूप।।5।।
मैं वन्दौं जिनदेव को, करि अति निर्मल भाव।
कर्मबन्ध के छेदने, और न कछु उपाय।।6।।
भविजन कों भव-कूप तैं, तुम ही काढ़नहार।
दीन-दयाल अनाथ-पति, आतम गुण भंडार।।7।।
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिव-गैल।।8।।
तुम पद-पंकज पूजतैं, विघ्न-रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय।।9।।
चक्री खगधर इन्द्रपद, मिलैं आप तैं आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप।।10।।
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म-जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन।।11।।

पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव।।12।।
थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेव।
खेवटिया तुम हो प्रभु जय जय जय जिनदेव।।13।।
राग सहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबैं, मेटो रोग कुटेव।।14।।
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अजान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान।।15।।
तुमको पूजैं सुरपती, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरे भयो, करन लग्यो तुम सेव।।16।।
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भव सिन्धु में, खेव लगाओ पार।।17।।
इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारिकैं, कीजे आप समान।।18।।
तुमरी नेक सुदृष्टि तैं, जग उतरत है पार।
हा हा डूब्यो जात हों, नेक निहार निकार।।19।।
जो मैं कहहूँ और सों, तो न मिटैं उरझार।
मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौं पुकार।।20।।
वंदों पाँचों परमगुरु सुरगुरु वंदत जास।
विघ्नहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश।।21।।
चौबीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यों पाठ सुखदाय।।22।।
मंगल मूर्ति परम पद, पंच धरो नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान्।।23।।

मंगल जिनवर पद नमो, मंगल अर्हत देव।
मंगलकारी सिद्ध पद, सो वन्दो स्वयमेव।।24।।
मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरु उवझाय।
सर्व साधु मंगल करो, वन्दों मन-वच-काय।।25।।
मंगल सरस्वति मात का, मंगल जिनवर धर्म।
मंगलमय मंगलकरो, हरो असाता कर्म।।26।।
या विधि मंगल से सदा, जग में मंगल होत।
मंगल 'नाथूराम' यह भव सागर दृढ़ पोत।।27।।

(पुष्पांञ्जलिं क्षिपामि।)
(यहाँ पर नौ बार णमोकार मंत्र जपना चाहिये)

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।
ॐ ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमो, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा। (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

मंगल विधान

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत् पंच–नमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते।।1।।
अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः।।2।।
अपरा – जित – मंत्रोऽयं, सर्व–विघ्न–विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः।।3।।
एसो पंच–णमो–यारो, सव्व–पावप्पणा–सणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होई मंगलं।।4।।
अर्ह – मित्यक्षरं ब्रह्म, – वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्ध–चक्रस्य सद्–बीजं, सर्वतः प्रणमाम्यहम्।।5।।
कर्माष्टक – विनिर्मुक्तं, मोक्ष–लक्ष्मी–निकेतनं।
सम्यक्त्वादि–गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।6।।
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी–भूत–पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे।।7।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

पंचकल्याणक का अर्घ

उदक–चंदन–तंदुल–पुष्पकैश्, चरु–सुदीप–सुधूप–फलार्घकैः।
धवल–मंगल–गान–रवाकुले, जिनगृहे कल्याण–महं यजे।।

ॐ ह्रीं श्री भगवतो गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकेभ्योअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचपरमेष्ठी का अर्घ

उदक–चंदन–तंदुल–पुष्पकैश्, चरु–सुदीप–सुधूप–फलार्घकैः।
धवल–मंगल–गान–रवाकुले, जिनगृहे जिननाथमहं यजे।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय–सर्व साधुभ्योअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनसहस्रनाम का अर्घ

उदक–चंदन–तंदुल–पुष्पकैश्, चरु–सुदीप–सुधूप–फलार्घकैः।
धवल–मंगल–गान–रवाकुले, जिनगृहे जिननाम यजामहे।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिन–अष्टोत्तर–सहस्र–नामेभ्योअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी का अर्घ

उदक–चंदन–तंदुल–पुष्पकैश्, चरु–सुदीप–सुधूप–फलार्घकैः।
धवल–मंगल–गान–रवाकुले, जिनगृहे जिनसूत्र–महं यजे।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्राणि तत्त्वार्थसूत्र–दशाध्याय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्य श्री विमर्शसागर जी का अर्घ

उदक–चंदन–तंदुल–पुष्पकैश्, चरु–सुदीप–सुधूप–फलार्घकैः।
धवल–मंगल–गान–रवाकुले, जिनगृहे जिनसूरीन्द्रं यजामहे।।

ॐ ह्रीं श्री शताष्टगुणसहित आचार्यश्री विमर्शसागरादि–त्रिन्यून–नवकोटि–मुनिवरेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्–जिनेन्द्र–मभि–वंद्य–जगत्–त्रयेशं,
स्याद्वाद – नायक – मनन्त – चतुष्ट – यार्हम्।
श्रीमूल – संघ – सुदृशां सुकृतैक – हेतुर्,
जैनेन्द्र–यज्ञ–विधि–रेष मयाऽभ्यधायि।।1।।

स्वस्ति त्रिलोक – गुरवे जिन–पुंगवाय,
स्वस्ति स्वभाव – महिमोदय–सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश–सहजोर्जित–दृङ्–मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न–ललिताद्–भुत–वैभवाय।।2।।

स्वस्–त्युच्–छलद्–विमल–बोध–सुधा–प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव–परभाव–विभासकाय।

स्वस्ति त्रिलोक–वितकैक–चिदुद्–गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल–सकलायत–विस्तृताय।।3।।

द्रव्यस्य शुद्धि–मधि गम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धि–मधिका–मधिगन्तु–कामः।
आलम्बनानि विविधान्–यव–लम्ब्य–वल्गन्,
भूतार्थ–यज्ञ–पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।।4।।

अर्हन् पुराण–पुरुषोत्तम–पावनानि,
वस्तून्–यनून–मखिलान्–यय–मेक एव।
अस्मिञ् ज्वलद्–विमल केवल बोध वह्नौ,
पुण्यं समग्र–मह–मेक–मना जुहोमि।।5।।

ॐ ह्रीं विधियज्ञ प्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

स्वस्ति मंगल पाठ

श्री वृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजितः।
श्री संभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दनः।
श्री सुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभः।
श्री सुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभः।
श्री पुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शीतलः।
श्री श्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः।
श्री विमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्तः।
श्री धर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शान्तिः।
श्री कुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथः।
श्री मल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रतः।
श्री नमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथः।
श्री पार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्द्धमानः।

इति जिनेन्द्र स्तस्ति मंगल विधानम्।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

(प्रत्येक श्लोक के बाद पुष्प क्षेपण करें)

नित्या–प्रकम्पाद्–भुतकेव–लौघाः, स्फुरन्मनःपर्यय–शुद्धबोधाः।
दिव्या–वधिज्ञान–बल–प्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।1।।
कोष्ठस्थ–धान्योप–ममेक–बीजं, संभिन्न–संश्रोतृ–पदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धि–बलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।2।।
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरा, दास्वादन–घ्राण–विलोक–नानि।
दिव्यान्–मतिज्ञान–बलाद्–वहन्तः, स्वस्ति क्रियासुःपरमर्षयो नः।।3।।
प्रज्ञा–प्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः, प्रत्येक–बुद्धाः दश–सर्व–पूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टांग–निमित्त–विज्ञाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।4।।
जंघानल–श्रेणि–फलाम्बु–तन्तु,–प्रसून–बीजांकुर–चार–णाह्वाः।
नभोऽङ्–गण–स्वैर–विहारिणश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।5।।
अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि, लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनो–वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।6।।
सकाम–रूपित्व–वशित्व–मैश्यं, प्राकाम्य–मन्तर्द्धि–मथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघात–गुणप्रधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।7।।
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं, घोरं तपो घोर पराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोर गुणाश्चरंतः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।8।।
आमर्ष–सर्वौष–धयस्तथाशी–र्विषाविषा–दृष्टि–विषा–विषाश्च।
सखिल्लविड्जल्ल–मलौषधीशाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।9।।
क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतो, मधुस्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवंतः।
अक्षीण–संवास–महा–नसाश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।10।।

इति परमर्षि स्वस्ति मंगल विधानं परिपुष्पांजलिं क्षिपामि।

(कायोत्सर्गं करोम्यहम्)

देव–शास्त्र–गुरु पूजा

(रचयिता–आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

हे आत्मज्ञ! सर्वज्ञ प्रभो! शुद्धात्मनिधि को प्रगटाया।
जड़द्रव्य–भाव नोकर्मों की, संतति को क्षण में विघटाया।।
जिनवाणी में सम्यक् तत्त्वों का, नित शीतल निर्झर झरता।
निर्ग्रंथ गुरु का शुभ दर्शन, अन्तरमन का कालुष हरता।।
शुभ तीन महानिधियों को पा, रत्नत्रय निधि प्रगटाऊँगा।
श्री देवशास्त्र निर्ग्रंथ गुरु की, पूजा नित्य रचाऊँगा।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र तिष्ठ–तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र मम सन्निहितो भव–भव वषट् सन्निधिकरणम्। (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

क्षीरोदधि से, गंगाजल से, तन को स्नान कराया है।
सम्यक्त्व शुद्धजल से अब तक, आतम को न नहलाया है।।
मिथ्यात्व असंयम भावों की, परिणति से मुक्त करो स्वामिन्।
निर्मल जल चरणों में अर्पित, हमको सम्यक्त्व वरो स्वामिन्।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

अब तक इन्द्रिय विषयों में ही, उपयोग मेरा रमता आया।
स्वामिन्! जड़ के आकर्षण से, चारों गति में भ्रमता आया।।
अब भेदज्ञान का चंदन ले, भवताप मिटाने आया हूँ।
अशरीरी सिद्ध प्रभु जैसी, स्थिरता पाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

भव–भव में पाये पद अनन्त, तृष्णा न शान्त हुई मेरी।
पद पा सोचूँ 'मैं भी कुछ हूँ', यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी।।
अविनाशी अक्षय पद पाने, अक्षत का अर्घ्य चढ़ाता हूँ।
चैतन्यधाम में रहूँ सदा, नित यही भावना भाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुन्दर भोगों के ईंधन से, क्या काम अग्नि बुझ सकती है।
जितना ईंधन डालो इसमें, यह उतनी तेज धधकती है।।
हूँ चिदानंद चिद्रूप शुद्ध, निज ब्रह्मचर्य में वास करूँ।
चरणों में सुमन समर्पित हैं, इस कामभाव का नाश करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म असंख्य प्रदेशों से, शमरस के झरने झरते हैं।
पी तृप्त हुआ करते ज्ञानी, जो निज में सदा विचरते हैं।।
मैं क्षुधारोग से पीड़ित हूँ, उपचार कराने आया हूँ।
नैवेद्य समर्पित चरणों में, निज समरस पीने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म प्रकाशी ज्ञान दीप, समकित से ज्योतिर्मय होता।
मिथ्यात्व तिमिर के नशते ही, अनुभव शुद्धात्म प्रखर होता।।
निज द्रव्य और गुण पर्यय से, इक क्षण अभेदता प्राप्त करूँ।
ज्योतिर्मय दीप समर्पित है, दर्शन मोहान्ध समाप्त करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म तत्त्व में तन्मयता, निश्चय तप आग जलाती है।
तब सहज शुभाशुभ कर्मों की, कालुष उसमें जल जाती है।।
शुभ धूप दशांग चढ़ाता हूँ, मेरी शुद्ध परिणति अन्वय हो।
कर्मों की कालुष जल जाये, शुद्धात्म तत्त्व में तन्मय हो।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म निराकुल सुख यह फल, शुद्धात्म ध्यान से फलता है।
निज वीतराग की परिणति से, यह मोक्ष महाफल मिलता है।।
अविनाशी ज्ञान शरीरी बन, निज में अनंत बल प्रगटाऊँ।
अर्पित करता फल चरणों में, निर्भार अतीन्द्रिय फल पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो महामोक्ष-फलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज परम पारिणामिक स्वभाव, ज्ञायक होकर प्रगटाया है।
अरिहंत प्रभु की वाणी में, शुद्धात्म सार यह आया है।।
निज परम पारिणामिक स्वभाव, ऐसा अनर्घ्य पद मिल जाये।
शुभ अर्घ्य समर्पित करता हूँ, चेतन गुण बगिया खिल जाये।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दर्शन-ज्ञानोपयोग युगपत, तिहुँकालों सहज प्रवर्त रहा।
शुद्धात्म अतीन्द्रिय सुख प्रतिक्षण, नूतन-नूतन अनुवर्त रहा।।

सम्पूर्ण द्रव्य-सहभावी-गुण, उनकी क्रमवर्ती-पर्यायें।
परिपूर्ण ज्ञान में प्रतिबिम्बित, सम्बन्ध सहज ज्ञानी गायें।।

अविनाशी अनुपम अचल निधि "श्री" अन्तरंग में हुई प्रगट।
जब कर्म घातिया नष्ट हुए, थी इनकी भी सामर्थ्य विकट।।

शुद्धात्म ध्यान की ले कुठार, संवर जब-जब आगे आता।
आस्रव के पैर ठिठक जाते, निर्जरा तत्त्व हँसकर जाता।।

शुद्धात्म ध्यान तप की महिमा, प्रभु सहज आपने पाई है।
शुद्धात्म ध्यान मैं भी पाऊँ, मन में प्रभु यही समाई है।।

निज ज्ञायक प्रभु की प्रभुता को, ज्ञायक बनकर ही पाऊँगा।
शुद्धात्म प्रदेशों का अमृत, पीकर अमूर्त प्रगटाऊँगा।।

हूँ चिदानंद चैतन्यप्रभु, यह बात आपने बतलाई।
शुद्धात्म सार का कथन जहाँ, वह जिनवाणी माँ कहलाई।।

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, में सार वही।
द्रव्यानुयोग जिसकी महिमा, कहता उसके अनुसार वही।।

स्याद्वादमयी जिनवाणी माँ, जो अनेकान्त को कहती है।
सच कहता प्रभु सच्ची श्रद्धा, मेरे अन्तस में रहती है।।

जिनवाणी माँ को पाकर ही, कलिकाल हुआ मंगल मेरा।
प्रभु आप विदेह विराजे हो, फिर भी सान्निध्य मुझे तेरा।।

जिनवाणी माँ के आश्रय से, निर्ग्रंथ गुरु का दर्शन है।
शुद्धात्मलीन इन श्रमणराज, चरणों का नित स्पर्शन है।।

चैतन्यराज की महिमा को, इन श्रमणराज ने जाना है।
शुद्धात्म सरोवर की निधियाँ, पाना यह मन में ठाना है।।

शुद्धात्म तत्त्व का कथन सार, श्री गुरु मुख से जब झरता है।
मन हिरण आत्म उपवन में तब, नित सहज कुलाँचें भरता है।।

हे तपोमूर्ति! निर्ग्रंथ गुरु, मेरा अन्तरतम दूर करो।
शुद्धात्म तत्त्व को प्राप्त करूँ, मन में भक्ति भरपूर करो।।

हे देव-शास्त्र निर्ग्रंथ गुरु, पूजन में हर्षित अन्तरमन।
सम्यक् 'विमर्श' नित शरण मिले, स्वीकारो बारम्बार नमन।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

प्रभु-पूजा प्रभु ध्यान से, हो निर्मल परिणाम।
स्वर्गादिक सुख भोगकर, मिले मोक्ष निष्काम।।

(परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्घावली

विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर का अर्घ

जल फल आठों दरब अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर – इन्द्रनहूतैं थुति पूरी न करी है।।
'द्यानत' सेवक जानके (हो) जग तैं लेहु निकार।।
सीमंधर जिन आदि तैं बीस विदेह मँझार।।
श्री जिनराज हो भव–तारण तरण जिहाज।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अकृत्रिम चैत्यालयों का अर्घ

कृत्या–कृत्रिम–चारु–चैत्य–निलयान्, नित्यं त्रिलोकी–गतान्,
वन्दे भावन–व्यन्तरान् द्युतिवरान्, कल्पामरा–वासगान्।।
सद् – गन्धाक्षत – पुष्प – दाम – चरुकैः सद्दीपधूपैः फलैर्,
नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा, दुष्कर्मणां शान्तये।।

सात करोड़ बहत्तर लाख सुभवन जिन पाताल में।
मध्यलोक में चार सौ अट्ठावन, जजों अघमल टाल के।
अब लख चौरासी सहस सन्तानवें, अधिके तेईस रु कहे।
बिन संख ज्योतिष व्यन्तरालय, सब जजों मन वच ठहे।

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमजिनबिम्बेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्ध परमेष्ठी का अर्घ

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रत–गणैः, संगं वरं चन्दनं,
पुष्पौघं विमलं सदक्षत–चयं रम्यं, चरुं दीपकम्।

धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये,
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं, सेनोत्तरं वाञ्छितम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध–चक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय पूजन का अर्घ

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निजगुण प्रकट किये।।
यह अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव–शास्त्र–गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो! विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्त–सिद्ध–परमेष्ठिभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय चौबीसी का अर्घ

जल फल आठों शुचिसार ताको अर्घ करों,
तुमको अरपों भवतार, भवतरि मोक्ष वरों।
चौबीसों श्री जिनचंद, आनन्दकंद सही,
पद जजत हरत भव फंद, पावत मोक्ष मही।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरान्त–चतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

तीस चौबीसी का अर्घ

द्रव्य आठों जु लीना है, अर्घ कर में नवीना है,
पूजतां पाप छीना है, भानुमल जोड़ कीना है।
दीप अढ़ाई सरस राजै, क्षेत्र दस ताँ विषैं छाजै,
सातशत बीस जिनराजे, पूजतां पाप सब भाजै।।

ॐ ह्रीं पाँच भरत, पाँच ऐरावत इन दस क्षेत्रों में भूत–भविष्यत्–वर्तमान सम्बन्धी तीस चौबीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री आदिनाथ भगवान् का अर्घ

शुचि निर्मल नीरं गन्ध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय।
दीप धूप फल अर्घ सु लेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि-बलि जाऊँ मन वच काय।
हे करुणानिधि! भवदुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पद्मप्रभ् भगवान् का अर्घ

जल फल आदि मिलाय गाय गुन, भगत भाव उमगाय।
जजों तुमहिं शिवतियवर जिनवर आवागमन मिटाय।।
मन वच तन त्रयधार देत ही जनम जरामृत जाय।
पूजों भावसों, श्रीपद्मनाथ पदसार पूजों भावसों।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ्जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री चन्द्रप्रभ् भगवान् का अर्घ

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनी गमों।।
श्रीचंदनाथ दुति चन्द, चरनन चंद लगे,
मन वच तन जजत अमंद, आतमजोति जगे।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ्जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री वासुपूज्य भगवान् का अर्घ

जलफल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरों यह लाई।।
वासुपूज्य वसुपूज तनुज पद, वासव सेवत आई।
बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सन्मुख धाई।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री शान्तिनाथ भगवान् का अर्घ

वसुद्रव्य सँवारी, तुम ढिग धारी, आनन्दकारी दृग-प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुणा धारी, यातैं थारी, शरनारी।।
श्री शान्तिजिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं, चक्रेशं।
हनि अरि चक्रेशं, हे गुणधेशं, दयामृतेशं मक्रेशं।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान् का अर्घ

जलगंध आदि मिलाय आठों दरब अरघ सजों वरों।
पूजों चरनरज भगतिजुत, जातें जगत सागर तरों।।
शिवसाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनि गुनमाल हैं।
तसु चरन आनन्दभरन तारण, तरन विरद विशाल हैं।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्व. स्वाहा।

श्री नेमिनाथ भगवान् का अर्घ

जल फल आदि साज शुचि लीने, आठों दरब मिलाय।
अष्टम छिति के राज करनकों, जजों अंग वसु नाय।।
मन वच तनतें धार देत ही, सकल कलंक नशाय।
दाता मोक्ष के श्री नेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पार्श्वनाथ भगवान् का अर्घ

नीरगंध अक्षतान् पुष्प चारु लीजिये।
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ तैं जजीजिये।।
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा।
दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री महावीर भगवान् का अर्घ

जल फल वसु सजि हिमथार, तन मन मोद धरों।
गुण गाऊँ भवदधि तार, पूजत पाप हरों।।
श्री वीर महाअतिवीर सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मति दायक हो।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री बाहुबलि भगवान् का अर्घ

हूँ शुद्ध निराकुल सिद्धों सम भवलोक हमारा वासा ना।
रिपु रागरु द्वेष लगे पीछे, यातें शिवपद को पाया ना।।
निज के गुण निज में पाने को, प्रभु अर्घ संजोकर लाया हूँ।
हे बाहुबली! तुम चरणों में, सुख सन्मति पाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबली-जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच बालयति तीर्थंकर भगवान् का अर्घ

सजि वसुविधि द्रव्य मनोज्ञ अरघ बनावत हैं।
वसुकर्म अनादि संयोग, ताहि नशावत हैं।।
श्री वासुपूज्य-मलि-नेम, पारस वीर अती।
नमूँ मन-वच-तन धरि प्रेम पाँचों बालयती।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्व. स्वाहा।

सोलहकारण का अर्घ

जल फल आठों दरब चढ़ाय 'द्यानत' वरत करों मन लाय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परम गुरु हो।।
दरश-विशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परम गुरु हो।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचमेरु का अर्घ

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करूँ प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु-सम्बन्धि अशीति जिन-चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अनर्घपद-प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वरद्वीप का अर्घ

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिवखेत, भूमि समरपतु हों।।
नन्दीश्वर श्री जिनधाम, बावन पुँज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरों।।
नन्दीश्वर द्वीप महान चारों दिशि सोहें।
बावन जिनमन्दिर जान सुर-नर-मन मोहें।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षण का अर्घ

आठों दरव संवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों।
भव-आताप निवार, दस-लक्षण पूजों सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्व. स्वाहा।

रत्नत्रय का अर्घ

आठ दरव निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये।
जनम रोग निरवार सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तर्षि का अर्घ

जल गंध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ कीजे पावना।।
मन्वादि चारण–ऋद्धि–धारक, मुनिन की पूजा करूँ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनंद विस्तरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिसप्तर्षिभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाण क्षेत्र का अर्घ

जल गंध अक्षत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगत सों, जोर कर विनती करौं।।
सम्मेदगढ़ गिरनार चंपा पावापुर कैलाश कों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाण भूमि निवास कों।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकर–निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्व. स्वाहा।

सरस्वती का अर्घ

जल चन्दन अक्षत फूल चरु, अरु दीप धूप अति फल लावे।
पूजा को ठानत जो तुम जानत, सो नर 'द्यानत' सुख पावै।।
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञान मई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्व. स्वाहा।

आचार्य श्री विरागसागर जी का अर्घ

जल चंदन अरु पुष्प सुगंधित, श्री गुरुवर के चरण चढाय।
भाव सहित गुरु पूजन करके, जनम जनम के पाप नशाय।।
दया क्षमा करुणा की मूरत, श्री विरागसागर गुरुराई।
भव भव का संताप मिटाने, गुरु चरणों की पूजा रचाई।

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विरागसागरजी यतिवरेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्य श्री विमर्शसागर जी का अर्घ

भावों का अर्घ चढ़ाने गुरु चरणों में आये हैं।
निज अनर्घ पद की चाह लिये झोली फैलाये हैं।
शुभ अर्घ्य चढ़ा जीवन में रत्नत्रय प्रगटायेंगे।
गुर विमर्श के गुणों की मंगल गीता गायेंगे।
गुरु की पूजा रचायेंगे, मंगल गीता गायेंगे।।

ॐ ह्रूँ परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी यतिवरेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री मद्देवेन्द्र कीर्ति प्रणीता
श्री कल्याण–मंदिर–स्तोत्र पूजा

पूर्व–पीठिका

श्रीमद्गीर्वाणसेव्यं प्रबलतरमहा–मोहमल्लातिमल्ल।
कान्तं कल्याणनाथं, कठिनशठमनो–जातमत्तेभसिंहम्।।
नत्वा श्रीपार्श्वदेवं, कुमुदविधुकृतो, रम्यकल्याणधाम्न।
स्तोत्रस्योच्चै र्विशालं, विधिवदनुपमं, पूजनं कथयतेऽत्र।।

पंचवर्णेन चूर्णेन, कर्तव्यं कमलं वरं।
वेदवार्धिकार वेद्यां, कर्णिकामध्यगं बुधैः।।
धौतवस्त्रधरः प्राज्ञः श्लेष्मादिव्याधिवर्जितः।
बाह्याभ्यन्तर–संशुद्धो, जिनपूजा–विधानवित्।।
गुरोराज्ञां विधायोच्चैः, शिरस्या–दरतस्ततः।
पृष्ट्वा सङ्घपतिं पूजा–प्रारम्भः त्रियतेऽञ्जसा।।
आदौ गन्धकुटीपूजां, विधायामल–वस्तुभिः।
पञ्चानामर्हदादीनां, ततोऽर्चां परमेष्ठिनाम्।।
ततो गत्वा गुरोरग्रे, भारती–मुनि–पूजनं।
कृत्वेलाशुद्धिकार्यं च, क्रमेणागमकोविदैः।।
ततोऽम्लानां च सामग्रीं, कृत्वा सद्गीः बुधोत्तमः।
पूजनं पार्श्वनाथस्य, कुर्यान्मन्त्र–पुरस्सरम्।।

एतत्पद्यसप्तकं पठित्वा स्वस्तिकस्योपरि पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्।

स्थापना (अनुष्टुप छन्द)

प्राणतस्वः समायातं, फणिलाञ्छन–संयुतम्।
वामामातृसुतं पार्श्वं, यजेऽहं तद्गुणाप्तये।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न! श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! मम हृदय अवतर अवतर संवौषट्! इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न! श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र! मम हृदये तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न! श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र! मम हृदयसमीपे सन्निहितो भव भव वषट्! इति सन्निधिकरणम्।

अष्टकम्

वियद्गङ्गासिन्धु–प्रमुखशुचितीर्थाम्बुनिवहैः।
शरच्चन्द्राभासैः, कनकमय–भृङ्गार–निहितैः।।
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनर खगाधीश महितं।
चिदानन्द प्राज्ञं, कमठ रचितो पद्रव जितम्।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

स्फुरद्गन्धाहृत–प्रचुर–फणिसंरुद्ध–तरूजैः।
रसैः कर्पूरास्यै र्निविडभव सन्ताप हरणैः।।
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनर खगाधीश महितं।
चिदानन्द प्राज्ञं, कमठ रचितो पद्रव जितम्।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय संसार ताप विनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

अखण्डैः शालीयै–रपगत–तुषै–रक्षतमयैः।
प्रपुञ्जैरानन्द–प्रणयजनकै नेत्रिमनसाम्।।
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनर खगाधीश महितं।
चिदानन्द प्राज्ञं, कमठ रचितो पद्रव जितम्।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतम् निर्वापामीति स्वाहा।

मरुद्दारूद्भूतै–र्विकचसरसी–जातबकुलैः।
लवंगैरामोद–भ्रमरमिलितैः पुष्पनिचयैः।।
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनर खगाधीश महितं।
चिदानन्द प्राज्ञं, कमठ रचितो पद्रव जितम्।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

सदन्नैरापूर्णं – प्रवरघृतपक्वान्नसहितै:।
रसाढ्यैर्नैवेद्यै–रतुलकाञ्चनपात्रविधृतै:।।
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनर खगाधीश महितं।
चिदानन्द प्राज्ञं, कमठ रचितो पद्रव जितम्।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

हविर्जातै: रम्यै–र्विदलितदिशाकीर्णतमस:
प्रदीप्तै र्माणिक्यै र्विशदकलधौतर्चिरमलै:।।
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनर खगाधीश महितं।
चिदानन्द प्राज्ञं, कमठ रचितो पद्रव जितम्।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुकर्पूरोत्पन्नै – रमरतरू – सच्चन्दनभवै:।
सुधूपौघै:–श्लाघ्यै–र्मिलदलिगणागुज्जितरवै:।।
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनर खगाधीश महितं।
चिदानन्द प्राज्ञं, कमठ रचितो पद्रव जितम्।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय अष्टकर्म दहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुपक्वै: नारङ्ग क्रमुकशुचिकूष्माण्डकरकै:।
फलै र्मोचाम्राद्यै विबुधशिवसम्पद्वितरणै:।।
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनर खगाधीश महितं।
चिदानन्द प्राज्ञं, कमठ रचितो पद्रव जितम्।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय मोक्षफल प्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जलै र्गन्धद्रव्यै विशदसदकै: पुष्पचरूकै:।
सुदीपै: सद्धूपै र्बहुफलयुतैरर्घ्यनिकरै:।
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनर खगाधीश महितं।
चिदानन्दप्राज्ञं, कमठ रचितो पद्रव–जितम्।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निवपामीति स्वाहा।

जयमाला

शताब्दजीवी समशत्रुमित्रो, हरित्प्रभाङ्गो हतमारदर्प।
सपादचापद्वयतुङ्गकायो, यस्तं सदा पार्श्वजिनं नमामि।।

निराभूषशोभं, परिध्वस्तलोभं,
चिदानन्दरूपं, नतानेकभूपं।
स्तुवे पार्श्वदेवं, भवाम्भोधिनावं,
त्रिषड्दोषहीनं, जगत्पूज्यमानम्।।
शिवं सिद्धकार्यं, वरानन्ततुर्यं,
रमानाथमीशं, जितानङ्गपाशम्।।स्तुवे.।।
शतेन्द्रार्च्यपादं, स्फुरद्दिव्यनादं,
गणाधीशमाद्यं, लसद्देववाद्यम्।।स्तुवे.।।
हरं विश्वनेत्रं, त्रिशुभ्रातपत्रं,
क्षुधाबह्निनीरं, द्विघासङ्गदूरम्।।स्तुवे.।।
दिशाचेलवन्तं, वरं मुक्तिकान्तं,
निरस्तारिमोहं, पुरूं सौख्यगेहम्।।स्तुवे.।।
जराजन्ममुक्तं, वरानंदयुक्तं,
हतक्रोधमानं, कृतज्ञानदानम्।।स्तुवे.।।
अविद्यापहारं, सुविद्यागभीरं,
स्वयंदीप्तिमूर्तिं, जगत्प्राप्तकीर्तिम्।।स्तुवे.।।
यतिवरवृषचन्द्रं, चित्कलापूर्णचन्द्रं।
विमलगुणसमृद्धं, नम्रनागामरेन्द्रम।।

जिनपतिमहिधारं, दु:खसन्तापहारं।
भजति नमति सारं, सौख्यसारं लभेत।।

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

सर्वजीवदयायुक्त:, सर्वलौकान्तिकार्चित:।
पार्श्वदेव: श्रियं दद्यात्, नित्यं पूजाविधायिनाम्।।

।। इत्याशीर्वाद:।।

(शालिनी छंद)

काशीदेशे वाराणसी–पुरेशो, यो बालत्व प्राप्तवैराग्यभाव:।
देवेन्द्राद्यै: कीर्तितं तं जिनेन्द्र, पूर्णार्घ्येन प्रार्चये वार्मुखेन।।

ॐ ह्रीं सर्वगुणसम्पन्नाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्री पार्श्वनाथाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पार्श्वनाथ जिन पूजा

(रचयिता–प.पू. भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसगार जी)

आदर्शो की गौरव गाथा, जग में जब गाई जायेगी।
उपसर्गजयी वामा सुत की, तब याद सहज ही आयेगी।
जिननें समता को धारणकर, जग को समता पथ दिखलाया।
दस भव का बैरी कमठ स्वयं, अपनी करनी पर पछताया।।
चिंतामणि पारसनाथ तुम्हें, हिरदय में आज बिठाऊँगा।
अर्चन पूजन वंदन करे, यह जीवन सफल बनाऊँगा।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहतो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।
परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि!

हे प्रभो! आपने जन्म जरा मृत्यु का क्षण में नाश किया।
आनंद कंद निज चेतन में, रमकर चैतन्य प्रकाश किया।।
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल व्याकुल हूँ भव भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों की ज्वाला में अब तक, भव ताप बढ़ाता आया हूँ।
मिट जाये भव संताप मेरा, भावों का चंदन लाया हूँ।।
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल व्याकुल हूँ भव भव से हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रादिक पद पाये लेकिन, अक्षय स्वातम पद न पाया।
है चाह मुझे अक्षय पद की अक्षत का थाल सजा लाया।।
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल व्याकुल हूँ भव भव से हे नाथ निराकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

हे नाथ! स्वानुभव सुमनों से, कामादिक भाव नशाने को।
आया हूँ द्वार तुम्हारे प्रभु, लाया हूँ पुष्प चढ़ाने को।।
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो!, मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल व्याकुल हूँ भव–भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय काम बाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जब हुआ असाता मोह उदय, तब क्षुधा तृषा का जोर हुआ।
रसना को तृप्त किया लेकिन, पौरुष उतना कमजोर हुआ।।
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल व्याकुल हूँ भव–भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं जगमग जगमग ज्ञान ज्योति, अपने में नित्य रहा करता।
पर्यायों में प्रभु! मोह तिमिर, मेरा धन हाय हरा करता।।
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल व्याकुल हूँ भव–भव से हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निश्चय तप की अग्नि में प्रभु! आठों कर्मो को दहकाया।
पाकर अनुपम चैतन्य सुरभि, तीनों लोकों को महकाया।।
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल व्याकुल हूँ भव–भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धोपयोग का सम्यक् फल, प्रभु तुमने ही चख पाया है।
नाना फल की इच्छाओं में, हमने दुख ही दुख पाया है।।
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल व्याकुल हूँ भव–भव से हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय महामोक्ष फल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन आठों द्रव्य लिये, आया अनर्घ पद पाने को।
गुण और गुणी का भेद प्रभो! आया हूँ आज मिटाने को।।
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो!, मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल व्याकुल हूँ भव भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ

चयकर प्राणत स्वर्ग से, वामा के उर आय।
दोज वदी वैशाख दिन, उत्सव गर्भ मनाय।।

ॐ ह्रीं वैशाख कृष्णा द्वितीयायां गर्भ मंगलमण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी, जन्म लिया प्रभु आप।
तीन लोक संग नारकी मिटा क्षणिक संताप।।

ॐ ह्रीं पौष कृष्णैकादश्यां जन्म मंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जान लिया जब आपने यह नश्वर संसार।
पौष कृष्ण एकादशी पाया दीक्षा सार।।

ॐ ह्रीं पौष कृष्णैकादश्यां तपो मंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

किया आत्म अनुभूति में चिदानंद रसपान।
चैत्र चतुर्थी कृष्ण को प्रगटा केवलज्ञान।।

ॐ ह्रीं चैत्र कृष्ण चतुर्थ्यां केवलज्ञान प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ला सप्तमी किया कर्म का नाश।
सम्मेदाचल से अचल मोक्षपुरी में वास।।

ॐ ह्रीं श्रावण शुक्ला सप्तम्यां मोक्ष मंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय जय पारस, जय जय पारस, जय चिंतामणि पारस देवा।
सुर नर किन्नर गुण गाते हैं, करते नित चरणों की सेवा।।

जब आप बनारस जन्म लिया, माता वामा अति हर्षाई।
धनपति ने रत्नों की वर्षा, छह माह पूर्व ही बरसाई।।

पन्द्रह मासों तक रत्नवृष्टि तीर्थंकर पुण्य महान कहा।
मेरुगिरि पर जन्माभिषेक क्षीरोदधि से स्नान अहा।।

इन्द्रादिक देवों ने मिलकर प्रभु अतिशय मोद मनाया था।
पितु अश्वसेन घर नगरी में शुभ आनंद मंगल छाया था।।

जिस जिस ने भी तुमको देखा, उनके सुख का कोई पार न था।
यौवन जब आया तब बचपन, जाने को भी तैयार न था।।

हे नाथ आप सम्यक्त्व निधि अपने संग लेकर आये थे।
निश्चय व्यवहार अहिंसा के परिणाम सहज ही पाये थे।।

पर द्रव्य हमें सुख देता है ऐसा निश्चय श्रद्धान न था।
निज पर निज का अनुशासन था निजबिन पर को स्थान न था।।

जब मात पिता ने निज घर में वधु लाने की मन में ठानी।
कह दिया लाऊँगा मुक्ति वधु जो रही आज तक अनजानी।।

इक दिवस साथियों संग जाते देखा निर्मल गंगा पानी।
मिल गया राह में इक तापस, कर रहा तपस्या मनमानी।।

बैठा पंचाग्नि तप करने चहुँ ओर लकड़ियाँ जलती हैं।
गंगा जमुना भी जल जायें, यों भीषण ताप उगलती हैं।।

लकड़ी की कोटर में बैठा, जल रहा नाग नागिन जोड़ा।
हे पार्श्व! आपने जान लिया, संबोधा तापस को थोड़ा।।

रे तापस खोटा तप करके, क्यों इतना पाप कमाता है?
जो ऐसा हिंसक तप करता वह दुर्गति से दुःख पाता है।।

तापस बोला मेरा यह तप, हिंसक कैसे हो सकता है?
तब कहा नाग नागिन जोड़ा, अग्नि में अरे झुलसता है।।
फिर तापस बोला रे बालक! क्यों झूठ यहाँ तू बोल रहा।
लक्कड़ जब चीरा अहि जोड़ा देखा प्राणों को छोड़ रहा।।

हे पार्श्व आपने णमोकार उनको तत्काल सुनाया था।
वे पद्मावति धरणेन्द्र हुए नागेन्द्र भवन को पाया था।।

यह देख किंतु मूरख तापस अपना अपमान समझता है।
बदले की आग में जल करके संक्लेश भाव से मरता है।।

था तापस पूरब का भाई पर वर्तमान में नाना था।
तुम करते रहे क्षमा लेकिन, इसका तो बैर पुराना था।।

प्रभु तुमको जब वैराग्य हुआ, आये लौकांतिक देव तभी।
ऐसी पर्याय हमें भी हो अनुमोदन करने लगे सभी।।

निर्ग्रन्थ महामुनि होकर जब निज आत्म ध्यान में लीन हुये।
हे स्वामिन् कर्मों के बंधन स्वयमेव अरे निर्जीण हुये।।

करके विहार प्रभु चार माह, फिर सात दिवस का योग धरा।
जाता था शम्बर देव कहीं, अटका विमान नीचे उतरा।।

हे नाथ आपकी वीतराग मुद्रा को वह न लख पाया।
पूरब का बैरी जान तुम्हें बैरी का बैर उमड़ आया।।

घनघोर वायु भीषण वर्षा, आवाज भयंकर करता था।
ओले शोले पत्थर पानी बरसाते मन न भरता था।।

धरती काँपी अंबर काँपा, धरणेन्द्रासन भी काँपा था।
उपसर्ग सात दिन किया किंतु शत्रु का हृदय न काँपा था।।

इक ओर आत्मा की शक्ति, इक ओर क्रोध की ज्वाला थी।
प्रगटा प्रभु केवलज्ञान अरे, झुक गया कमठ मतवाला भी।।

कोई कहता यह होनी है कोई कहता यह अनहोनी।
हे नाथ अपेक्षायें सारी है स्याद्वाद सम्मुख बौनी।।

व्यवहार और निश्चय से जो, वस्तु स्वरुप को जानेगा।
वस्तु का वह प्रतिपक्ष धर्म, सच्ची श्रद्धा से मानेगा।।

निश्चय स्वरूप में रहना ही, वस्तु की होनी कहलाती।
शुभ अशुभ भाव व उनका फल अनहोनी है माँ बतलाती।।

होनी हो चाहे अनहोनी, जो होना होकर रहता है।
होनी अनहोनी टालूँगा यह कौन घमण्डी कहता है?

हे नाथ द्रव्य गुण पर्यय से, अणु-अणु स्वतंत्र बतलाया है।
जिसको निश्चय श्रद्धान अहा! उसने मुक्ति पद पाया है।।

सम्मेदाचल से ज्यों तुमने, निर्वाण महापद को पाया।
हमको भी पद निर्वाण मिले, मेरा भी मन प्रभु ललचाया।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पार्श्वनाथ को भक्तिवश, करता कोटि प्रणाम
है विमर्श नित प्रति यही, मिले आत्म विश्राम।।

।।परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।।

अष्ट कमल दल पूजा

इच्छित कार्य साधक

कल्याण-मंदिर-मुदार-मवद्य भेदि,
भीता-भय प्रदमनिंदित-मंघ्रि-पद्मम्।
संसार-सागर - निमज्जदशेष जन्तु,
पोतायमान-मभिनम्य जिनेश्वरस्य।।1।।

अन्वयार्थ - कल्याण मंदिरं-कल्याणों के मंदिर, **उदारम्**-उदार, **अवद्यभेदि**-पापों को नष्ट करने वाले, **भीताभयप्रदम्**-संसार से डरे हुए जीवों को अभय देने वाले, **अनिन्दितम्**-प्रशंसनीय, **संसार सागर-निमज्जदशेष जन्तु**-संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए समस्त जीवों के लिए, **पोतायमानम्**-जहाज के समान आधारभूत, **जिनेश्वरस्य**-(ऐसे) जिनेन्द्र भगवान के, **अङ्घ्रिपद्मम्**-चरणकमल को, **अभिनम्य**-नमस्कार करके (स्तुति करता हूँ)

भावार्थ- कल्याणों के मंदिर, उदार, पापों को नष्ट करनेवाले, संसार से डरे हुए जीवों को अभय देने वाले, प्रशंसनीय और संसाररूपी समुद्र में डूबते हुए समस्त जीवों के लिए जहाज के समान आधारभूत ऐसे उन भगवान पार्श्वनाथ स्वामी के चरण कमलों को नमस्कार करके (मैं कुमुदचन्द्राचार्य) स्तुति करूँगा।

जाप-ॐ ह्रीं अर्हं णमो इट्ठकज्ज सिद्धि पराणं जिणाणं।

पद्यानुवाद

चिन्तामणि प्रभु पारस को, हृदय बुलायें रे.....sss
भव भव के संकट, हो-हो हम शीघ्र नशाये रे-ss
कल्याणों के मंदिर हैं, अघहर सौख्य समुन्दर हैं।
भवदुःख से भयभीतों को, अभयदान से सुंदर हैं।।
डूबे जो भवसिंधु जल, है जहाज द्वय चरणकमल।
पार्श्व प्रभु की भक्ति में, लीन रहे जो भवि प्रतिपल।।
वंदन करके हम, हो-हो-2 प्रभु स्तुति गायें रे।।1।।

अर्घ्य- ॐ ह्रीं भव समुद्र पतज्जन्तु तारणाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

अभीप्सित सिद्धि दायक

यस्य स्वयं सुरगुरु–र्गरिमाम्बुराशेः,
स्तोत्रं सुविस्तृत–मतिर्न विभु–र्विधातुम्।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्–मय–धूमकेतोस्,
तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये।।2।।

अन्वयार्थ–गरिमाम्बुराशेः–गौरव के समुद्रस्वरूप, **यस्य**–जिन पार्श्वनाथ की, **स्तोत्रम् विधातुम**–स्तुति करने के लिए, **स्वयं सुविस्तृतमतिः**–खुद विस्तृत बुद्धि वाले, **सुरगुरु**–बृहस्पति भी, **विभुः**–समर्थ, **न अस्ति**–नहीं हैं, **कमठस्मय धूमकेतोस्**–कमठ का मान भस्म करने के लिए अग्निस्वरूप, **तस्य तीर्थेश्वरस्य**–उन भगवान् पार्श्वनाथ की, **किल**–आश्चर्य है कि, **एषः अहम्**–मैं, **संस्तवनम् करिष्ये**–स्तुति करूँगा।

भावार्थ– गौरव के समुद्रस्वरूप जिन पार्श्वनाथ तीर्थंकर की स्तुति करने के लिए खुद विस्तृत बुद्धि वाले बृहस्पति भी समर्थ नहीं है और जो कमठ के मान को भस्म करने के लिए अग्निस्वरूप थे ऐसे उन पार्श्वनाथ भगवान की आश्चर्य है कि मैं स्तुति करूँगा।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो दव्वकराणं ओहि जिणाणं।

पद्यानुवाद

सुरपति विस्तृत मतिवाला, स्तुतियाँ करने वाला।
गौरवसागर पार्श्व तेरी, गा न सका स्तुतिमाला।
कमठ शठी का गिरि सम मान, भस्म करने हो अग्निसमान।
जयति–जयति जय जय जय जय, जयवंतों पारस भगवान।।
फिर भी निश्चय से हम स्तुति गायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं अनंतगुणाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जल भय निवारक

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप,
मस्मादृशः कथमधीश भवन्त्यधीशाः।
धृष्टोऽपि कौशिक–शिशु–र्यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः।।3।।

अन्वयार्थ–अधीश–हे स्वामिन्! **सामान्यतः अपि**–साधारण रीति से भी, **तव**–आपके, **स्वरूपं**–स्वरूप को, **वर्णयितुं**–वर्णन करने के लिए, **अस्मादृशाः**–मुझ जैसे मनुष्य, **कथं**–कैसे, **अधीशाः**–समर्थ, **भवन्ति**–हो सकते है? अर्थात् नहीं हो सकते, **यदि वा**–अथवा, **दिवान्धः**–दिन में अंधा रहने वाला, **कौशिक शिशुः**–उल्लू का शिशु, **धृष्टः अपि सन**–ढीठ होता हुआ भी, **किम्**–क्या, **घर्मरश्मेः**–सूर्य के, **रूपं**–रूप का **प्ररूपयति किल**–प्ररूपण कर सकता है अर्थात् नहीं कर सकता है।

भावार्थ– हे प्रभो! जिस तरह उलूक का शिशु सूर्य के रूप का वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि जब तक सूर्य रहता है, तब तक वह अंधा रहता है, इसी तरह मैं आपके सामान्य स्वरूप का भी वर्णन नहीं कर सकता हूँ क्योंकि मैं भी मिथ्याज्ञानरूपी अंधकार से अंधा होकर आपके दर्शन से वञ्चित रहा हूँ।।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो समुद्दभयसामण बुद्धीणं परमोहि जिणाणं।

पद्यानुवाद

नाथ आपका शुद्धस्वरूप, अविनाशी है अमल अनूप।
कहने को असमर्थ प्रभो! मंदबुद्धि साधारण रूप।।
दिनकर प्राची से आता उल्लू अंधा हो जाता।
ढीठ उलूक शिशु लेकिन, रवि महिमा की जिद लाता।।
फिर भी वे शिशु क्या वर्णन कर पायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं चिद्रूपाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

असमय निधन निवारक

मोह-क्षयादनुभवन्नपि नाथ! मर्त्यो,
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत्।
कल्पांतवान्त पयसः प्रकटोऽपि यस्मान्,
मीयेत केन जलधेः-र्ननु रत्नराशिः।।4।।

अन्वयार्थ-नाथ!- हे नाथ! **मर्त्यः**-मनुष्य, **मोहक्षयात्**-मोहनीय कर्म के क्षय से, **अनुभवन् अपि**-अनुभव करता हुआ भी, **तव**-आपके, **गुणान्**-गुणों को, **गणयितुं**-गिनने के लिए, **नूनं**-निश्चय करके, **न क्षमेत्**-समर्थ नहीं हो सकता है, **यस्मात्**-क्योंकि, **कल्पांतवांत पयसः**-प्रलयकाल के समय जिसका पानी बाहर हो गया है, ऐसे **जलधेः**-समुद्र की, **प्रकटःअपि**-प्रकट हुई भी, **रत्नराशिः**-रत्नों की राशि, **ननु केन मीयेत**-निश्चय ही किसके द्वारा गिनी जा सकती है? अर्थात् किसी के द्वारा नहीं।

भावार्थ- हे प्रभो! जिस तरह प्रलयकाल में पानी न होने से साफ-साफ दिखने पर भी समुद्र के रत्नों को कोई नहीं गिन सकता, उसी प्रकार मिथ्यात्व के अभाव में साफ-साफ दिखने वाले आपके गुणों को कोई नहीं गिन सकता। क्योंकि वे अनंतानंत है।

जाप-ॐ ह्रीं अर्हं णमो मिच्चुवारयाणं सव्वोसहि जिणाणं।

पद्यानुवाद

नाथ! मोहक्षय से मानव, आत्मगुणों का कर अनुभव।
निश्चय ही निजबुद्धि से, तव गुण गिनना न संभव।।
प्रलयकाल जब आता है, सागर जल बह जाता है।
प्रगट रत्नराशि को भी, कौन पुरुष गिन पाता है।।
हम फिर भी स्वामिन् साहस दिखलायें रे...

अर्घ्य- ॐ ह्रीं गहन गुणाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

प्रच्छन्न धन प्रदर्शक

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य गुणाकरस्य।
बालोऽपि किं न निजबाहु युगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः।।5।।

अन्वयार्थ-नाथ!-हे स्वामिन्! **जडाशयः अपि 'अहम्'**-मैं जड़बुद्धि (मूर्ख) भी, **लसदसंख्य गुणाकरस्य**-शोभायमान असंख्यात गुणों की खानि स्वरूप, **तव**-आपके, **स्तवं कर्तुं**-स्तवन करने के लिए, **अभ्युद्यतः अस्मि**-तैयार हुआ हूँ क्योंकि, **बालः अपि**-बालक भी, **स्वधिया**-अपनी बुद्धि के अनुसार, **निजबाहुयुगं**-अपने दोनों हाथों को **वितत्य**-फैलाकर, **किम्**-क्या, **अम्बुराशेः**-समुद्र के **विस्तीर्णताम्**-विस्तार को, **न कथयति**-नहीं कहता? अर्थात् कहता है।

भावार्थ- हे नाथ! जैसे बालक शक्ति न होते हुए भी अपनी बुद्धि अनुसार अपने दोनों हाथ फैलाकर समुद्र के विस्तार का वर्णन करने को तैयार रहता है वैसे ही मैं जड़बुद्धि भी अनंत गुणों की खानि स्वरूप आपकी स्तुति करने को उद्यत हुआ हूँ।

जाप-ॐ ह्रीं अर्हं णमो गोधण बुड्डिकराणं अणंतोहि जिणाणं।

पद्यानुवाद

मैं जड़बुद्धि अज्ञानी, आप गुणों की हैं खानि।
तव गुण स्तवन करने की, करता है मन नादानी।।
बालक निज बुद्धि अनुसार, बाहु युगल को शीघ्र पसार।
स्वामिन्! क्या नहिं बतलाता,सागर का कितना विस्तार।।
बालक सम हम भी स्तुति को आये रे...

अर्घ्य- ॐ ह्रीं परमोन्नत गुणाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

संतान सम्पत्ति प्रसाधक

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश!
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः।
जाता तदेव – मसमीक्षित कारितेयं,
जल्पंति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि।।6।।

अन्वयार्थ–ईश !– हे प्रभो! **तव**–आपके, **ये गुणाः**–जो गुण, **योगिनाम् अपि**–योगियों को भी, **वक्तुं**–कहने के लिए, **न यांति**–नहीं प्राप्त होते अर्थात् जिनका कथन योगिजन भी नहीं कर सकते, **तेषु**–उनमें, **मम्**–मेरा, **अवकाशः**–अवकाश, **कथं भवति**–कैसे हो सकता है? अर्थात् मैं उन्हें कैसे वर्णन कर सकता हूँ, **तत्**–इसलिए, **एवं**–इस प्रकार, **इयं**–मेरा यह, **असमीक्षित कारिताजाता**–बिना विचारे काम करता हुआ, **वा**–अथवा, ठीह ही है (ननु)–निश्चयसे, **पक्षिणः अपि**–पक्षी भी, **निजगिरा**–अपनी वाणी से, **जल्पंति ननु**–बोला करते हैं।

भावार्थ– हे प्रभो! आपके अपरिमित गुणों का कथन जब योगीश्वर तक नहीं कर पाते तब मैं अल्पज्ञ भला कहाँ ठहरता हूँ अतः स्तुति करने का मैंने स्वशक्ति बिना विचारे जो प्रयास किया वह उसी प्रकार है जैसे पशु–पक्षी मानव जाति की वाणी में असमर्थ हो अपनी ही बोली में बोला करते हैं। वैसे ही मैं अपनी बोली में आपकी प्रभावशालिनी पुण्यदायिनी स्तुति करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो पुत्त इत्थि कराणं कोट्ठ बुद्धीणं।

पद्यानुवाद

नाथ! आपके निर्मल गुण, कह न सके योगी भगवन्।
फिर मुझको अवकाश कहाँ, जो तव गुण का करे कथन्।।
हे स्वामिन् यह स्तुति गान, है अविचारित क्रिया महान।
ज्यों पक्षी निज भाषा में, करते रहते मधुरिम गान।।
स्तुतियाँ करके आनंद मनायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं अगम्यगुणाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

सर्व भय नाशक

आस्ता–मचिन्त्य महिमा जिन! संस्तवस्ते,
नामाऽपि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रातपोपहत पान्थ जनान्निदाघे,
प्रीणाति पद्म सरसः स रसोऽनिलोऽपि।।7।।

अन्वयार्थ–जिन !– हे जिनेन्द्र! **अचिन्त्य महिमा**–अचिंत्य है माहात्म्य जिसका ऐसा, **ते**–आपका, **संस्तवः**–स्तवन, **आस्ताम्**–दूर रहे, **भवतः**–आपका, **नाम अपि**–नाम भी, **जगन्ति**–जीवों को, **भवतः**–संसार से, **पाति**–बचा लेता है क्योंकि, **निदाघे**–ग्रीष्मकाल में, **तीव्रातपोपहतपांथ जनान्**–तीव्र धूप से सताये हुए पथिक जनों को, **पद्म सरसः**–कमलों के सरोवर का, **सरसः**–सरस शीतल, **अनिलः अपि**–पवन भी, **प्रीणाति**–संतुष्ट करता है।

भावार्थ– हे देव! आपके स्तवन की तो अचिन्त्य महिमा है ही, पर आपका नाममात्र भी जीवों को संसार के दुःखों से बचा लेता है जैसे ग्रीष्मकाल में धूप से पीड़ित मनुष्यों को, कमलयुक्त सरोवर तो सुख पहुँचाते ही हैं पर उन सरोवरों की शीतल हवा भी सुख पहुँचाती है।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो अभीट्ठ साधयाणं बीजबुद्धीणं।

पद्यानुवाद

दूर रहे स्तोत्र अरे, नाम आपका जो सुमरे।
हे अचिंत्य महिमा वाले, वह भव दुःख को दूर करे।।
ग्रीष्मकाल आतपभारी, पद्म सरोवर दुःख हारी।
शीतल सुरभित वायु भी, ज्यों लगती अति सुखकारी।।

अर्घ्य– ॐ ह्रीं स्तवनार्हाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

कुपितोपदंश विनाशक

हृद् वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिली भवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धाः।
सद्यो भुजंगम मया इव मध्य भाग–
मभ्यागते वन शिखण्डिनि चन्दनस्य।।8।।

अन्वयार्थ–विभो– हे स्वामिन्! **त्वयि**–आपके, **हृद्वर्तिनि 'सति'**–हृदय में मौजूद रहते हुए, **जन्तोः**–जीवों के, **निबिडाः अपि**–सघन भी, **कर्म बंधाः**–कर्मों के बंधन, **क्षणेन्**–क्षण भर में, **वन शिखण्डिनि**–वन मयूर के, **चन्दनस्य मध्यभागम् अभ्यागते 'सति'**–चन्दन तरु के बीच में आने पर, **भुजङ्गम मया इव**–सर्पो की कुण्डलियों के समान, **सद्यः**–शीघ्र ही, **शिथिली भवन्ति**–ढीले हो जाते हैं।

भावार्थ– हे भगवन्! जिस तरह मयूर के आते ही चंदन के वृक्ष में लिपटे हुए साँप ढीले पड़ जाते हैं उसी तरह जीवों के हृदय में आपके आने पर उनके कर्मबंधन ढीले पड़ जाते हैं।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो उण्हगदहारीणं पादाणुसारीणं।

पद्यानुवाद

हे प्यारे पारस भगवन्! रहते हो जिस हृदयासन।
क्षणभर में हो शिथिल अरे, सघन कठोर कर्मबंधन।।
जैसे चंदन के तरु पर, वन मयूर आते क्षण भर।
लिपटे हुए भुजंगों की, कुण्डलियाँ खुलती डरकर।।
भक्ति बिन कैसे हम कर्म नशायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं कर्मबंधविनाशकाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

अष्ट दल कमल पूजा

पार्श्व प्रभु के चरण कमल में, मन वच काया से वंदन।
अष्ट द्रव्य का थाल सजाया, लाया उत्तम जल–चंदन।।
उज्ज्वल अक्षत पुष्प चरु शुभ दीप धूप फल लाया हूँ।
निर्मल भक्तिभाव समर्पित, करने चरणों आया हूँ।।

अष्ट कमल दल पर अहा, समुदित अर्पित अर्घ।
सिद्धसदन मम उर सदा, अनुभूँ सुख अपवर्ग।।

ॐ ह्रीं अष्टदल कमलाधिपतये श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्प वृश्चिक विष विनाशक

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र,
रौद्रैरुपद्रव–शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि।
गोस्वामिनि स्फुरित तेजसि दृष्टमात्रे,
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलाय मानैः।।9।।

अन्वयार्थ–जिनेन्द्र – हे जिनदेव! **स्फुरित तेजसि** – पराक्रमी, **गोस्वामिनि** – राजा के, **दृष्टमात्रे**–दिखते ही, **आशु**–शीघ्र ही, **प्रपलाय मानैः**–भागते हुए **चौरैः**–चोरों के द्वारा, **पशवः इव**–पशुओं की तरह, **त्वयि वीक्षिते अपि**–आपके दिखते ही, आपके दर्शन करते ही, **मनुजाः**–मनुष्य, **रौद्रैः**–भयंकर, **उपद्रवशतैः**–सैकड़ों उपद्रवों के द्वारा, **सहसा एव**–शीघ्र ही, **मुच्यन्ते**–छोड़ दिये जाते हैं।

भावार्थ– हे नाथ! जिस तरह तेजस्वी राजा के दिखते ही चोर चुराई हुई गायों को छोड़कर शीघ्र ही भाग जाते हैं, उसी तरह आपके दर्शन होते ही भयंकर उपद्रव मनुष्यों को छोड़कर भाग जाते हैं।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो विसहर विस विणासयाणं संभिण्णसोदारणं।

पद्यानुवाद

सूर्य तेज फैले भू पर, हो गोपाल दृष्टिगोचर।
पशु चोर तत्काल भगे, उसी जगह पशु को तजकर।।
वैसे ही तुमको भगवन्, देखे जो भी मानव जन।
शत् उपद्रवों से सहसा, बच जाते हैं हे स्वामिन्।।
प्रभु आप मुझको हरपल नजरायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं दुष्टोपसर्ग विनाशकाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

तस्कर भय विनाशक

त्वं तारको जिन! कथं भविनां त एव,
त्वामुद् वहन्ति हृदयेन यदुत् तरन्तः
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून–
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः।।10।।

अन्वयार्थ–जिन!– हे जिनेन्द्र देव! **त्वं भविनाम् तारकः कथं**–आप संसारी जीवों को तारने वाले कैसे हो सकते हैं? **यत्**–क्योंकि, **उत्तरन्तः**–संसार समुद्र से पार होते हुए, **ते एव**–वे संसारी जीव ही, **हृदयेन**–हृदय से, **त्वाम्**–आपको, **उद्वहन्ति**–तिरा ले जाते हैं, **यद्वा**–अथवा ठीक है कि, **दृतिः**–मसक, **यत्**–जो, **जलं तरति**–पानी में तैरती है, **सःएषः**–वह, **नूनं**–निश्चय से, **अन्तर्गतस्य**–भीतर स्थित, **मरुतः**–हवा का ही, **अनुभावः किल**–प्रभाव है।

भावार्थ– हे प्रभो! जिस तरह भीतर भरी हुई वायु के प्रभाव से मसक पानी में तैरती है, उसी प्रकार आपको हृदय में धारण करने वाले (मन से आपका चिन्तवन करने वाले) पुरुष आपके ही प्रभाव से संसार समुद्र से तिरते हैं।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो तक्खर भयपणासयाणं उजुमदीणं।

पद्यानुवाद

नाम आपका जो धारक, वो खुद भवसागर पारक।
साथ आपको ले जाता नाथ! आप कैसे तारक?
पवन भरी हो जब अंदर, मशक तैरती जल अंदर।
शीघ्र किनारा पाती है, वायु को भी संग लेकर।।
वायु बिन कैसे मशकें तिर पाये रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं सुध्येयाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जल अग्नि भय विनाशक

यस्मिन् हर–प्रभृतयोऽपि हत प्रभावाः,
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन,
पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन।।11।।

अन्वयार्थ–यस्मिन्–जिसके विषय में, **हरप्रभृतयः अपि**–महादेव आदि भी, **हतप्रभावाः जाताः**–प्रभाव रहित हो गये हैं, **सः**–वह, **रतिपतिः अपि**–कामदेव भी, **त्वया**–आपके द्वारा, **क्षणेन**–क्षणमात्र में, **क्षपितः**–नष्ट कर दिया गया, **अथ**–अथवा ठीक है कि, **येन पयसा**–जिस जल ने, **हुतभुजः विध्यापिता**–अग्नि को बुझाया है, **तत् अपि**–वह जल भी, **दुर्धर वाडवेन**–प्रचण्ड बडवानल के द्वारा, **किं**–क्या, **न पीतं**–नहीं पिया गया ? अर्थात् पिया गया।

भावार्थ– जिस काम ने हरि हर ब्रह्मा आदि महापुरुषों को पराजित कर दिया था, उस काम को भी आपने पराजित कर दिया, यह आश्चर्य की बात नही है क्योंकि जो जल संसार की समस्त अग्नि को नष्ट करता है, उस जल को भी बडवानल नामक समुद्र की अग्नि नष्ट कर डालती है।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो वारियालयण बुद्धीणं विउल मदीणं।

पद्यानुवाद

अहो! विष्णु बह्मा शंकर, कामदेव आगे किंकर।
कामदेव को जीत लिया, अतः तुम्हीं जिन तीर्थंकर।।
यद्यपि अग्नि बुझाता जल, किंतु प्रगट जब बडवानल।
तब जल खुद ही जल जाता, काम न आता जल का बल।।
रति काम तुमको निज गुरु बनायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं अनङ्गमथनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

अग्नि भय विनाशक

स्वामिन्–ननल्प गरिमाणमपि प्रपन्नाः,
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यति–लाघवेन,
चिन्त्यो न हंत महतां यदि वा प्रभावः।।12।।

अन्वयार्थ–स्वामिन्!– हे प्रभो! **अहो**–आश्चर्य है कि, **अनल्प गरिमाणम् अपि**–अधिक गौरव से युक्त भी विरोध पक्ष में–अत्यन्त वजनदार, **त्वाम्**–आपको, **प्रपन्नाः**–प्राप्त हो, **हृदये दधानाः**–हृदय में धारण करने वाले, **जन्तवः**–प्राणी, **जन्मोदधिं**–संसार समुद्र को, **अतिलाघवेन**–बहुत ही लघुता से, **कथं**–कैसे, **लघु**–शीघ्र, **तरंति**–तर जाते हैं, **यदि वा**–अथवा, **हन्त**–हर्ष है कि, **महताम्**–महापुरुषों का, **प्रभावः**–प्रभाव, **चिन्त्य**–चिन्त्वन के योग्य, **न भवति**–नहीं होता है।

भावार्थ– श्लोक में आये हुए 'अनल्पगरिमाणं' पद के 'अधिक वजनदार' और 'अत्यन्त गौरव से युक्त–श्रेष्ठ' इस तरह दो अर्थ होते हैं। उनमें से आचार्य श्री ने प्रथम अर्थ को लेकर विरोध बतलाते हुए आश्चर्य प्रकट किया है, और दूसरे अर्थ को लेकर उस विरोध का परिहार किया है।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो दव्वकराणं ओहि जिणाणं।

पद्यानुवाद

आप प्रभु! गरिमाधारी, हृदय धरें भवि संसारी।
लघु भवसागर तिर कैसे? बन जाते शिव अधिकारी।।
अहो! आपकी क्या महिमा, अहो आपकी क्या गरिमा।
चिन्तन से भी दूर अहो, आप महाजन की महिमा।।
प्रभु तुमको ध्याकर हम भी तिर जायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं परम गुरवे क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जल मिष्ठता कारक

क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्म-चौराः।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके,
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी।।13।।

अन्वयार्थ-विभो!-हे स्वामिन्! **यदि**-यदि, **त्वया**-आपके द्वारा, **क्रोधः**-क्रोध, **प्रथमं**-पहले ही, **निरस्तः**-नष्ट कर दिया गया था, **तदा**-तो फिर, **वद**-कहिये कि आपने, **कर्मचौराः**-कर्मरुपी चोर **किल**-आश्चर्य है कि, **कथं**-कैसे, **ध्वस्ताः**-नष्ट किये ?, **यदि वा**-अथवा, **अमुत्र लोके**-इस लोक में, **हिमानी अपि**-बर्फ-तुषार ठण्डा होने पर भी, **किम्**-क्या, **नीलद्रुमाणि**-हरे हरे हैं वृक्ष जिनमें ऐसे, **विपिनानि**-वनों को, **न प्लोषति**-नहीं जला देता है। अर्थात् जला देता है मुरझा देता है।

भावार्थ- लोक में ऐसा देखा जाता है कि क्रोधी मनुष्य ही शत्रुओं को जीतते हैं, पर भगवन्! आपने क्रोध को तो नवमें गुणस्थान में ही जीत लिया था फिर क्रोध के अभाव में 14वें गुणस्थान तक कर्मरूपी शत्रुओं को कैसे जीता ? आचार्य भगवन् ने इस लोकविरुद्ध बात पर पहले आश्चर्य प्रगट किया, पर बाद में जब उन्हें ख्याल आता है कि ठण्डा तुषार बड़े-बड़े वनों को क्षणभर में जला देता है अर्थात् क्षमा से भी शत्रु जीते जा सकते हैं तब वे अपने आश्चर्य का स्वयं समाधान कर लेते हैं।

जाप-ॐ ह्रीं अर्हं णमो रिक्खभय वज्जयाणं चोद्दस पुव्वीणं।

पद्यानुवाद

निज चैतन्य प्रकाश किया, क्रोध प्रथम ही नाश दिया।
आश्चर्य प्रभु! फिर कैसे? कर्म चोर का नाश किया।।
सो जैसे शीतल हिमपात होता है प्रभु यदि दिन रात।
नील वृक्ष वाले वन को नहीं जलाया क्या हे नाथ।।
प्रभु तुम जैसे ही हम कर्म नशायें रे...

अर्घ्य- ॐ ह्रीं जित क्रोधाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

शत्रु स्नेह जनक

त्वां योगिनो जिन! सदा परमात्मरूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज कोश-देशे।
पूतस्य निर्मल रुचेर्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य संभव पदं ननु कर्णिकायाः।।14।।

अन्वयार्थ-जिन!- हे जिनेन्द्र! **योगिनः**-ध्यान करने वाले मुनीश्वर, **सदा**-हमेशा, **परमात्मरुपं**-परमात्मस्वरुप, **त्वाम्**-आपको, **हृदयाम्बुजकोशदेशे**-हृदय रुपी कमल के मध्य भाग में, **अन्वेषयन्ति**-खोजते हैं, **यदि वा**-अथवा ठीक है कि, **पूतस्य**-पवित्र और, **निर्मलरुचेः**-निर्मल कांति वाले, **अक्षस्य**-कमल के बीज अथवा शुद्धात्मा का, **सम्भवपदं**-उत्पत्ति स्थान अथवा खोज करने का स्थान, **कर्णिकायाः अन्यत्**-कमल की कर्णिका अथवा हृदय कमल की कर्णिका को छोड़कर, दूसरा, **किम् ननु**-क्या हो सकता है ? अर्थात् नहीं।

भावार्थ- बड़े-बड़े योगीश्वर ध्यान करते समय अपने हृदय कमल में आपको खोजते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि जैसे कमल बीज की उत्पत्ति कमल कर्णिका में ही होती है उसी तरह शुद्धात्मस्वरुप आपका सद्भाव भी हृदयकमल की कर्णिका में ही होगा। श्लोक में आये हुए अक्ष शब्द के कमलबीज और आत्मा इस तरह दो अर्थ होते हैं।

जाप-ॐ ह्रीं अर्हं णमो भंसण भय झवणाणं अट्ठंग महाणिमित्त कुसलाणं।

पद्यानुवाद

हे परमात्मरूप भगवन्! जपें निरंतर योगीजन्।
हृदय कमल के मध्य करें, नाथ आपका अन्वेषण।।
ज्यों निर्मल पवित्र कांति, कमल बीज की उत्पत्ति।
एक कर्णिका ही कारण, नहीं दूसरी हो सकती।।
ऐसे शुद्धातम हृद मध्य दिखायें रे...

अर्घ्य- ॐ ह्रीं महन्मृग्यान विनाशकाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

चोरी का गत द्रव्य दायक

ध्यानाज्जिनेश! भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्म दशां व्रजन्ति।
तीव्रानलादुपल भावमपास्य लोके,
चामीकरत्व मचिरादिव धातुभेदाः।।15।।

अन्वयार्थ–जिनेश–हे जिनेन्द्र! **लोके**–लोक में, **तीव्रानलात्**–तीव्र अग्नि के संबंध से, **धातुभेदाः**–अनेक धातुएँ, **उपलभावं**–पत्थर रूप पूर्व पर्याय को, **अपास्य विहाय**– छोड़कर, **अचिरात्**–शीघ्र ही, **चामीकरत्वं इव**–जिस तरह स्वर्ण पर्याय को प्राप्त हो जाती है, उसी तरह, **भविनः**–संसार के प्राणी, **भवतः ध्यानात्**–आपके ध्यान से, **देहं क्षणेन्**–शरीर को छोड़कर क्षण भर में, **परमात्म दशां**–परमात्म अवस्था को, **वज्रन्ति**–प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ– हे परम ज्योति! जिस प्रकार जिन धातुओं से सोना बनता है, वे अनेक अशुद्ध धातुएँ तीव्र अग्नि के संबंध से पत्थर रूप पूर्व पर्याय को छोड़कर सुवर्ण पर्याय को प्राप्त हो जाती हैं। उसी प्रकार जो जीव आपका ध्यान करते हैं, वे थोड़े ही समय में शरीर छोड़कर परम शुद्ध परमात्म अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खर धणप्पयाण विउव्वग पत्ताणं।

पद्यानुवाद

जो भविजन करते नित ध्यान, हे जिनेश पारस भगवान्।
क्षणभर में तन को तजकर, बन जाते परमात्म समान।।
जैसे स्वर्ण शिला का बंध, तीव्र अग्नि का हो संबंध।
शुद्ध स्वर्ण पर्याय प्रकट, स्वर्ण शिला पर्याय अबंध।।
निर्बंध आतम इस विधि ही पायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं कर्मकिट्ट दहनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

गहन वन पर्वतभय विनाशक

अन्तः सदैव जिन! यस्य विभाव्यसे त्वं,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरं।
एतत्स्वरुपमथ मध्य विवर्तिनो हि,
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः।।16।।

अन्वयार्थ–जिन– हे जिनेश्वर देव! **भव्यैः**–भव्य प्राणियों के द्वारा, **यस्य**–जिस शरीर के, **अन्तः**–भीतर, **त्वं**–आप, **सदैव**–हमेशा, **विभाव्यसे**–ध्याये जाते हों, **तत्**–उस, **शरीरं अपि**–शरीर को भी आप, **कथं**–क्यों, **नाशयसे**–नष्ट करा देते हैं?, **अथ**–अथवा, **एतत्स्वरुपं**–यह स्वभाव ही है, **यत्**–कि, **मध्य–विवर्तिनः–** मध्यस्थ–समभाव में रहने वाले और राग द्वेष से रहित, **महानुभावाः**–महापुरुष, **विग्रहं**–विग्रह शरीर और द्वेष को, **प्रशमयन्ति**–शांत करते हैं।

भावार्थ– लोक में रीति प्रचलित है कि जो जहाँ रहता है, अथवा जहाँ जिसका ध्यान सम्मान आदि किया जाता है वह उस जगह का विनाश नहीं करता। पर भगवन्! आप भव्य जीवों के द्वारा जिस शरीर में हमेशा सम्मानपूर्वक ध्याये जाते हें आप उन्हें उसी ब्रिगह को नष्ट करने का उपदेश देते हैं आचार्य भगवन् को पहले इस लोक विरुद्ध बात पर भारी आश्चर्य होता है। परंतु जब उनकी दृष्टि विग्रह शब्द के दूसरे अर्थ पर जाती है तब उनका आश्चर्य दूर हो जाता है श्लोक मे विग्रह के दो अर्थ है शरीर और द्वेष।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो गहण वण भय णायसयाणं विज्जाहराणं।

पद्यानुवाद

भविजन जिस तन में ध्याते, नाथ आपको हैं पाते।
उस तन को भी फिर कैसे, नाशवान कह नश जाते।।
सो मध्यस्थ महाजन जो, विग्रह शांत करे ही वो।
है वस्तुस्वरुप ऐसा, क्यों आश्चर्य किसी को हो।।
प्रभु ध्यान से ही विग्रह नश पाये रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं देह देहि कलह निवारकाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

युद्ध विग्रह विनाशक

आत्मा मनीषिभि रयं त्व–दभेद बुद्धया,
ध्यातो जिनेन्द्र! भव तीह भवत्प्रभाव:।
पानीय मप्यमृत मित्यनु चिन्त्यमानं,
किं नाम नो विष विकार मपा करोति।।17।।

अन्वयार्थ–जिनेन्द्र–हे जिनेश्वर देव! **इह**–इस लोक में, **मनीषिभि:**–बुद्धिमानों के द्वारा, **त्वदभेद बुद्धया**–आपसे अभेद बुद्धि से अर्थात् परमात्मा और मेरी आत्मा में एकता की बुद्धि से, **ध्याता**–ध्यान किया गया, **अयं**–यह संसारी, **आत्मा**–आत्मा, **भवत्प्रभाव:**–आप जैसे प्रभाव से युक्त, **भवति**–हो जाता है सो ठीक ही है, **अमृतं**–यह अमृत है, **इति**–इस प्रकार, **अनुचिंत्यमानं**–चिंतन मनन वा ध्यान किया हुआ, **पानीयं अपि**–पानी भी, **किन्नाम विषविकारं**–क्या विष के विकार को, **न अपाकरोति**–दूर नहीं करता ? अपितु करता ही है।

भावार्थ– हे जिनेन्द्र देव! जैसे पानी में 'यह अमृत है' ऐसा विश्वास करने से मंत्रादि के संयोग से वह पानी भी विषविकार जन्य पीड़ा को नष्ट कर देता है। वैसे ही इस संसार में योगिजन अभेदबुद्धि से जब आपका ध्यान करते हैं तब वे अपने आत्मा को आपके समान चिन्त्वन करने से आप ही के समान हो जाते हैं।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठ बुद्धिणासयाणं चारणाणं।

पद्यानुवाद

इस जग में जो बुद्धिमान, करें अभेद बुद्धि से ध्यान।
संसारी अन्तर आतम, हो जाता परमात्म समान।।
जल में अमृत का चिंतन करते जो विश्वासी जन।
विष विकार का निश्चय ही वमन करें वो हे स्वामिन्।।
सच्ची श्रद्धा से प्रभु सम बन जायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं संसार विष सुधोपमाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

सर्प विष विनाशक

त्वामेव वीत तमसं परवादिनोऽपि,
नूनं विभो हरि हरादि धिया प्रपन्ना:।
किं काँच कामलिभिरीश सितोऽपि शंखो,
नो गृह्यते विविध–वर्ण विपर्य–येण।।18।।

अन्वयार्थ–विभो!– हे स्वामिन्! **परवादिन: अपि**–अन्य मतावलम्बी पुरुष भी, **वीततमसं**–अज्ञान अंधकार से रहित, **त्वाम् एव**–आपको ही, **नूनं**–निश्चय से, **हरि हरादि धिया**–विष्णु महादेव आदि की कल्पना से, **प्रपन्ना:**–प्राप्त होते हैं पूजते हैं।, **किम्**–क्या, **ईश**–हे विभो! **काचकामिलिभि:**–जिनकी आँख पर रंगदार चश्मा है, अथवा जिन्हें पीलिया रोग हो गया है ऐसे पुरुषों के द्वारा, **शंख सित: अपि**–शंख सफेद होने पर भी **विविध वर्ण विपर्ययेण**–तरह तरह के विपरीत वर्णो से, **नो ग्रह्यते**–नहीं ग्रहण किया जाता ? अर्थात् किया जाता है।

भावार्थ– हे भगवन्! जिस तरह कामला (पीलिया) रोग वाला मनुष्य सफेद शंख को नाना प्रकार से ग्रहण करता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व के उदय से अन्य मतावलम्बी पुरुष आपको ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर आदि मानकर पूजते हैं।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो फणि सत्ति सोसयाणं पण्ह समणाणं।

पद्यानुवाद

रागद्वेष न छू पाते, वीतमोह प्रभु कहलाते।
हरि हरादि की बुद्धि से, परवादी तुमको ध्याते।।
पाण्डु रोग हो गया जिसे, शंख श्वेत न दिखे उसे।
विविध वर्णमाला दिखता, रोगी कहता सत्य उसे।।
निज–निज दृष्टि से सब तुमको ध्यायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं सर्वजनहिताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

नेत्र रोग विनाशक

धर्मोपदेश समये सविधानु भावा,
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि,
किं वा विबोध मुपयाति न जीवलोकः।।19।।

अन्वयार्थ–धर्मोपदेश समये –धर्मोपदेश के समय, **ते**–आपकी, **सविधानुभावात्**–समीपता के प्रभाव से, **जनः आस्ताम्**–मनुष्य तो दूर रहे, **तरुःअपि**–वृक्ष भी, **अशोकः**–शोक रहित, **भवति**–हो जाता है, **वा**–अथवा, **दिनपतौ अभ्युद्गते 'सति'**–सूर्य के उदित होने पर, **समहीरुहः अपि जीवलोकः**–वृक्षों सहित समस्त जीवलोक, **किं**–क्या, **विबोधं**–विशेष ज्ञान को, **न उपयाति**–प्राप्त नहीं होते ? अर्थात् होते है।

भावार्थ– इस श्लोक में अशोक शब्द के दो अर्थ होते है–एक अशोक वृक्ष और दूसरा शोक रहित। इसी तरह विबोध शब्द के भी दो अर्थ हैं– एक विशेष ज्ञान और दूसरा हरा भरा तथा प्रफुल्लित होना। हे भगवन्! जब आपके पास में रहने वाला वृक्ष भी अशोक हो जाता है तब आपके पास रहने वाला मनुष्य अशोक–शोक रहित हो जावे तो इसमें क्या आश्चर्य हैं ? यह 'अशोक वृक्ष' प्रातिहार्य का वर्णन है।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खिगद णासयाणं आगासगामीणं।

पद्यानुवाद

दिव्यध्वनि खिरती जिस काल, भविजन होते खूब निहाल।
मानव जन तो दूर रहे, तरु भी शोक रहित तत्काल।।
सूर्य उदय जब होता है जगत् अरे क्या सोता है।
कमलादिक वृक्षों के संग जगत बोधमय होता है।।
दिव्य–ध्वनि सुनकर सब शोक मिटायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं अशोक वृक्ष विराजमानाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

उच्चाटन मोचक

चित्रं विभो कथम वाङ्मुख वृन्तमेव,
विष्वक्पतत्यविरला सुर पुष्प वृष्टिः।
त्वद् गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश,
गच्छन्ति नून मध एव हि बन्धनानि।।20।।

अन्वयार्थ–विभो– हे प्रभो! **चित्रं**–आश्चर्य है कि, **विश्वक्**–सब ओर, **अविरला**–व्यवधान रहित, **सुरपुष्पवृष्टिः**–देवों के द्वारा की हुई फूलों की वर्षा, **अवाङ्मुखवृन्तं**–नीचे की ओर डंठल करे, **कथं पतति**–क्यों गिरती है, **यदि वा**–अथवा ठीक है कि, **मुनीश!**–हे मुनियों के नाथ, **तवद्गोचरे**–आपके समीप, **सुमनसां**–पुष्पों अथवा विद्वानों के, **बंधनानि**–डंठल अथवा कर्मों के बंधन, **नूनं हि**–निश्चय से, **अधः एव गच्छंति**–नीचे को ही जाते हैं।

भावार्थ– इस श्लोक में सुमनस् शब्द के दो अर्थ हैं– एक फूल दूसरा देव या विद्वान इसी तरह बंधन शब्द के भी दो अर्थ हैं–एक फूलों का बंधन–डंठल, और दूसरा कर्मों के प्रकृति आदि 4 तरह के बंध। हे भगवन्! जो आपके पास रहता है, उसके कर्मों के बंधन नीचे चले जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं, इसीलिये तो आपके ऊपर जो फूलों की वर्षा होती है उसमें फूलों के बंधन नीचे होते हैं और पंखुरी ऊपर यह पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य का वर्णन है।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो गहिल गहणासयाणं आसीविसाणं।

पद्यानुवाद

पुष्पवृष्टि करते सुरगण, डंठल नीचे क्यों स्वामिन्।
है आश्चर्य बडा भारी, किंतु युक्ति इसमें भगवन्।।
निकट आपके जो आते, शुभ मन वाले कहलाते।
कर्मबंध रुपी डंठल, स्वयं अधोगति को पाते।।
कर्मो के बंधन खुद ही खुल जायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं सुरपुष्प वृष्टि शोभिताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

शुष्क वनोपवन विनाशक

स्थाने गभीर हृदयोदधि सम्भवाया:,
पीयूषतां तव गिर: समुदीरयन्ति।
पीत्वा यत: परम सम्मद संग भाजो,
भव्या व्रजन्ति तर साप्य जरा मरत्वं।।21।।

अन्वयार्थ–गभीर हृदयोदधि संभवाया:–गंभीर हृदयरुपी समुद्र में पैदा हुई, **तव**–आपकी, **गिर:**–वाणी के, **पीयूषतां**–अमृतपने को लोग, **स्थाने**–ठीक ही, **समुदीरयंति**–प्रकट करते हैं।, **यत:**–क्योंकि, **भव्या:**–भव्य जीव, **ताम् पीत्वा**–उसे पीकर, **परमसंमद सङ्गभाज: 'संत'**–परम सुख के भागी होते हुए, **तरसा अपि**–बहुत ही शीघ्र, **अजरामरत्वं**–अजर अमरपने को, **व्रजन्ति**–प्राप्त होते हैं।

भावार्थ– लोक में प्रचलित है कि अमृत गहरे समुद्र से निकला था और उसका पान करने से देव लोग आनंदित होते हुए अजर अमर हो गये थे। भगवन्! आपकी वाणी भी आपके गंभीर हृदय रुपी समुद्र से पैदा हुई है और उसके सेवन करने से लोग परम सुखी हो अजर-अमर हो जाते हैं ऐसी स्थिति में लोग यह कहें कि आपकी वाणी अमृत है तो ठीक ही कहते हैं यह दिव्यध्वनि प्रातिहार्य का वर्णन है।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो पुप्फिय तरु वत्तयराणं दिट्ठिविसाणं।

पद्यानुवाद

हृदयोदधि से प्रगट गंभीर, वाणी अमृतमय हे धीर।
भविजन निज कर्णाञ्जलि से, पीकर पाते ज्ञान–शरीर।।
चिदानंद के अनुभव से, कर्म नशाते भव–भव के।
अजर–अमर पद को पाकर, स्वामी हो निज वैभव के।।
दिव्यध्वनि सुनकर मिथ्यात्व नशायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं दिव्यध्वनि प्रातिहार्याय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

मधुर फल प्रदायक

स्वामिन्! सुदूर मवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्ये वदंति शुचय: सुरचामरौघा:।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय,
ते नूनमूर्ध्व गतय: खलु शुद्धभावा:।।22।।

अन्वयार्थ–स्वामिन्– हे प्रभो! **मन्ये**–मैं मानता हूँ कि, **सुदूरं**–नीचे को बहुत दूर तक, **अवनम्य**–नम्रीभूत होकर, **समुत् पतन्त:**–ऊपर को आते हुए, **शुचय:**–पवित्र, **सुरचामरौघा:**–देवों के चँवर समूह, **वदन्ति**–लोगों से कह रहे हैं कि, **ये**–जो, **अस्मै मुनिपुङ्गवाय**–इन श्रेष्ठ मुनि को, **नतिं**–नमस्कार, **विदधते**–करते हैं, **ते**–वे, **नूनं**–निश्चय से, **शुद्धभावा:**–शुद्ध भाव वाले होकर, **ऊर्ध्वगतय:**–उर्ध्व गति वाले, **भंवति खलु**–हो जाते हैं।

भावार्थ– हे विभो! जब देव लोग आप पर चँवर ढोरते हैं, तब वे चँवर पहले नीचे की ओर झुकते हैं और बाद में ऊपर को जाते हैं, सो मानों लोगों से यह कहते हैं कि भगवान् को झुककर नमस्कर करने वाले पुरुष हमारे समान ही ऊपर को जाते हैं अर्थात् स्वर्ग मोक्ष को पाते हैं यह 'चँवर' प्रातिहार्य का वर्णन है।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो तरुपत्तणासयाणं उग्गतवाणं।

पद्यानुवाद

उज्ज्वल चौंसठ चँवर अहा! देव ढुराते हर्ष महा।
हो सुदूर अति नम्रीभूत, ऊपर जाते यही कहा।।
जो भवि करता प्रभु नमन, होता उसका उर्ध्वगमन।
निश्चय निर्मल भावों से भाव शुभाशुभ करे शमन।।
चौंसठ चँवरों से हम भक्ति दिखायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं सुर चामर विराजमानाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

राज्य सम्मान दायक

श्यामं गभीर गिर मुज्जवल हेमरत्न,
सिंहासनस्थ मिह भव्य–शिखण्डि–नस्त्वाम्।
आलोक–यंति रभसेन नदन्त–मुच्चै–,
श्चामी–कराद्रि–शिरसीव नवाम्बु–वाहम्।।23।।

अन्वयार्थ–इह–इस लोक में, **श्यामं**–श्याम वर्ण, **गभीर गिरं**–गंभीर दिव्यध्वनि युक्त और **उज्जवल–हेमरत्न–सिंहासनस्थं**–निर्मल स्वर्ण के बने हुए रत्नजड़ित सिंहासन पर स्थित, **त्वाम्**–आपको, **भव्य शिखण्डिन:**–भव्य जीवरुपी मयूर, **चामीकराद्रि गिरसि**–सुवर्णमय मेरु पर्वत की शिखर पर, **उच्चै: नदन्तं**–जोर से गरजते हुए, **नवाम्बुवाहम् इव**–नूतन मेघ की तरह, **रभसेन**–उत्कंठापूर्वक, **आलोकयंति**–देखते हैं।

भावार्थ– हे प्रभो! जिस तरह सुवर्णमय मेरु पर्वत पर उमड़े हुए गर्जना करने वाले, काले मेघ को देखकर मयूरों को बहुत ही आनंद होता है। उसी तरह दिव्य ध्वनि करते हुए सोने के सिंहासन पर विराजमान श्याम वर्ण वाले आपके दर्शन कर भव्य जीवों को अत्यंत आनंद होता है। उनका मन मयूर की तरह नाचने लगता है।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो वज्झय हरणाणं दित्ततवाणं।

पद्यानुवाद

रत्नजड़ित शुभ सिंहासन, श्यामवर्ण प्रभु सुंदर तन।
सुन गंभीर दिव्यवाणी, भवि मयूर का नाचे मन।।
लगता स्वर्ण सुमेरु पर, श्याम मेघ ही हुये मुखर।
देख रहे हो भव्य मयूर, अति आनंद विभोर होकर।।
सिंहासन पर तन लख भवि हर्षायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं पीठत्रय नायकाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

शत्रु विजय राज्य प्रदायक

उद्गच्छता तव शिति–द्युति–मण्डलेन,
लुप्तच्छ–दच्छवि रशोक–तरुर्बभूव।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग,
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि।।24।।

अन्वयार्थ–उद्गच्छता– स्फुरायमान, **तव**–आपके, **शितिद्युति मण्डलेन**–श्याम प्रभामण्डल के द्वारा, **अशोक तरु:**–अशोक वृक्ष, **लुप्तच्छदच्छवि**–कांति हीन पत्नों वाला, **बभूव**–हो गया, **यदि वा**–अथवा, **वीतराग**–हे राग द्वेष रहित देव! **तव सान्निध्यत: अपि**–आपकी समीपता मात्र से ही, **क: सचेतन: अपि**–कौन पुरुष सचेतन होकर भी, **नीरागतां**–अनुराग के अभाव को, **न व्रजंति**–नहीं प्राप्त होता अर्थात् होता है।

भावार्थ– हे भगवन्! आपकी श्यामल कान्ति के संसर्ग से अशोक वृक्ष की लालिमा दब गई, सो ठीक ही है वीतराग के सामीप्य से कौन सचेतन–प्राणी वीतराग नहीं हो जाता? अर्थात् सभी हो जाते हैं। इस श्लोक में राग दो अर्थो वाला है– अनुराग–प्रेम–स्नेह और दूसरा लालिमा।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो रज्जदावयाणं महातवाणं

पद्यानुवाद

भामण्डल की नील प्रभा, जगमग जगमग हुई सभा।
तरु अशोक के पत्नों की, लगती थी फीकी शोभा।।
चेतन पुरुष जो ध्याता है, निकट आपको पाता है।
वीतरागता प्रगटाकर तुम सम ही बन जाता है।।
भामण्डल भवि के भव सात दिखाये रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं भामण्डल मंडिताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

षोडशदल कमल पूजा

सुरनर किन्नर स्तुति गाते, लेकर भावों का चंदन।
अष्टकर्म हों नाश प्रभुजी, करते श्री चरणों वंदन।।
उज्ज्वल जल चंदन अक्षत वसुद्रव्य थाल भर लाया हूँ।
षोडश दल का अर्घ समुच्चय, अर्पित कर हर्षाया हूँ।।

ॐ ह्रीं हृदयस्थित षोडशदल कमलाधिपतये श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

असाध्य रोग शामक

भो भो: प्रमाद–मवधूय भजध्वमेन–
मागत्य निर्वृति पुरीं प्रति सार्थवाहम्।
एतन् निवेदयति देव जगत् त्रयाय,
मन्ये नदन्नभिनभ: सुर दुन्दुभिस्ते।।25।।

अन्वयार्थ–देव–हे देव! **मन्ये**–मैं मानता हूँ कि, **अभिनभ:**–आकाश में सब ओर, **नदन्**–शब्द करती हुई, **ते**–आपकी, **सुरदुंदुभि:**–देवों के द्वारा बजाई गई दुंदुभि, **जगत् त्रयाय**–तीन लोकों के जीवों को, **एतत् निवेदयति**–यह सूचित कर रही है कि, **भो: भो:**–रे रे प्राणियों! **प्रमादं अवधूय**–प्रमाद को छोड़कर, **निर्वृति पुरीं प्रति सार्थवाहं**–मोक्षपुरी को ले जाने में अगुवा, **एवं**–इन भगवान् को, **आगत्य**–आकर, **भजध्वं**–भजो।

भावार्थ– हे प्रभो! आकाश में जो देवों का नगाड़ा बज रहा है, वह मानों तीन लोक के जीवों को चिल्ला चिल्लाकर सचेत कर रहा है कि जो मोक्षनगरी की यात्रा के लिये जाना चाहते हैं वे प्रमाद छोड़कर भगवान पार्श्वनाथ की सेवा करें।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो हिंडल मलणाणं महातवाणं।

पद्यानुवाद

दुंदुभि नभ में बजती है, शब्द चतुर्दिक करती है।
त्रिभुवन के भवि जीवों को सूचित करने कहती है।।
भो प्राणी आलस्य तजो अशुभ भाव का कारण जो।
मुक्तिपुरी को ले जाते सार्थवाह प्रभु पार्श्व भजो।।
दुंदुभि को सुनकर भवि शरण में आयें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं देव दुंदुभिनादाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

वचन सिद्धि प्रतिष्ठायक

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ता कलाप कलितो रुसितात पत्र,
व्याजात्त्रिधा धृत तनुर्ध्रुव मभ्युपेतः।।26।।

अन्वयार्थ–नाथ!– हे स्वामिन्! **भवता भुवनेषु उद्योतितेषु 'सत्सु'**–आपके द्वारा तीनों लोकों के प्रकाशित होने पर, **विहताधिकारः–**अपने अधिकार से भ्रष्ट तथा, **मुक्ता कलाप कलितोल्लसितातपत्र व्याजात्–**मोतियों के समूह से सहित अतएव शोभायमान सफेद छत्र के छल से, **तारान्वितः–**ताराओं से वेष्टित, **अयं विधुः–**यह चन्द्रमा, **त्रिद्या धृततनुः–**तीन तीन शरीर धारण कर, **ध्रुवं–**निश्चय से, **त्वां अभ्युपेतः–**आपकी सेवा में उपस्थित हुआ है।

भावार्थ– हे अपूर्व तेज पुञ्ज! आपने तीनों लोकों को प्रकाशित कर दिया अब चन्द्रमा किसे प्रकाशित करे? इसलिए वह शोभायमान सफेद छत्र का वेश धारण कर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ है। छत्रों में जो मोती लगे हैं वे मानों चन्द्रमा के परिवार स्वरुप तारागण ही हैं।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो जय पदाईणं घोरतवाणं।

पद्यानुवाद

नाथ आप त्रिभुवन आधार, किया प्रकाशित लोक अपार।
तारागण परिवार सहित, नहीं रहा शशि का अधिकार।।
अतः छत्र तन धारण कर, तारागण मोती लेकर।
छल से फिर लेने अधिकार, आया हो शशि निश्चय कर।।
छत्र त्रय प्रभु जी तव गौरव गाये रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं छत्रत्रय सहित क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

बैर विरोध विनाशक

स्वेन प्रपूरित जगत् त्रय–पिण्डितेन,
कान्ति प्रताप–यश सामिव संचयेन।
माणिक्य हेम रजत प्रविनिर्मितेन्,
सालत्रयेण भगवन्नमितो विभासि।।27।।

अन्वयार्थ–भगवन्!–हे भगवन्! आप, **अमितः–**चहुँ ओर, **प्रपूरित जगत् त्रय पिण्डितेन–**भरे हुए जगत्त्रय के पिण्ड अवस्था को प्राप्त, **स्वेन–**स्वकीय (अपने), **कांति प्रताप यशंसा–** कान्ति प्रताप और यश के, **संचयेन इव–**समूह के समान, **माणिक्य हेमं रजत प्रविनिर्मितेन–**माणिक्य, सुवर्ण और चाँदी के द्वारा निर्मित, **शालत्रयेण–**तीन परकोटों के द्वारा, **विभासि–**शोभायमान हो।

भावार्थ– हे प्रताप पुञ्ज! समवशरण भूमि में आपके चारों ओर माणिक्य, स्वर्ण, और चाँदी के बने तीन कोट हैं, वे मानों आपकी कान्ति प्रताप और कीर्ति के वर्तुलाकार समूह ही हैं।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो खलदुट्ठ णासयाणं घोर परक्कमाणं।

पद्यानुवाद

समवशरण अतिशय सुंदर, वर्तुल परकोटे अन्दर।
माणिक, स्वर्ण, रजत से जो, बने हुए हैं अति सुंदर।।
कान्ति प्रताप, सुयश वाला, मानों त्रय जग रच डाला।
ऐसी शोभित होती है, परकोटों की यह माला।।
कमलासन ऊपर अतिशय दिखलाये रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं शालत्रयाधिपतये क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

यशः कीर्ति प्रसारक

दिव्यस्त्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपाना–
मुत्सृज्य रत्न रचितानपि मौलि बंधान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र,
त्वत् सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव।।28।।

अन्वयार्थ–जिन!– हे जिनेश्वर स्वामिन्, **नमत् त्रिदशाधिपानां**–विनय से नम्रीभूत इन्द्रों के, **रत्न–रचितान्**–रत्नों से जड़ित, **मौलि बंधान्**–मुकुटों की मणियों को, **उत्सृज्य**–छोड़कर, **दिव्यस्त्रजः**–दिव्य पुष्पों की मालाएँ, **भवतः पादौ श्रयंति**–आपके चरणों का आश्रय लेती हैं।, **यदि वा**–अथवा ठीक है कि, **सुमनस्**–अच्छे मन वाले प्राणी, **त्वत्संगमे**–आपके समीप में ही, **रमंते एव**–रमण करते हैं, **परत्र**–परलोक में अन्य कुदेवादिक स्थानों में **न रमन्ते**–रमण नहीं करते हैं।

भावार्थ– हे देवाधिदेव! आपको नमस्कार करते समय इन्द्रों के मुकुटों में लगी हुई दिव्य पुष्प मालायें आपके श्री चरणों में समर्पित हो जाती हैं ये पुष्प मालायें आपसे इतना प्रेम करती हैं कि उसके पीछे इन्द्रों के रत्न निर्मित मुकुटों को भी छोड़ देती हैं अर्थात् आपके लिये बड़े–बड़े इन्द्र भी नमस्कार करते हैं।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो उवद्दव वज्जणाणं घोर गुणाणं।

पद्यानुवाद

भक्ति से होकर अभिभूत, इन्द्र मुकुट हो नम्रीभूत।
दिव्यमाल मुकुटों को तज, हो तव चरणों आश्रयभूत।।
सो यह ठीक ही है स्वामी, अच्छे मन वाले प्राणी।
तव समीप ही रमते हैं, नहीं रमें बन परगामी।।
इन्द्रादिक अपना सौभाग्य मनायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं भक्तजनान वनपतिराय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

आकर्षण कारक

त्वं नाथ जन्म जलधे र्विपराङ् मुखोऽपि,
यत्तारयस्य सुमतो निज पृष्ठ लग्नान्।
युक्तं हि पार्थिव नृपस्य सतस्तवैव,
चित्रं विभो! यदसि कर्म विपाक शून्यः।।29।।

अन्वयार्थ–नाथ!–हे प्रभु! **त्वं**–आप, **जन्म जलधेः**–संसार समुद्र से, **विपराङ्मुख**–विमुख होने पर, **यत् अपि**–जो भी, **निजपृष्ठ लग्नान्**–स्वकीय पीठ पर लगे हुए अथवा अपने, **असुमतः**–अनुयायी भव्य प्राणियों को, **तारयसि**–पार करते हैं, **हि तव युक्तं**–निश्चय से आपके लिए युक्त ही है क्योंकि, **पार्थिवनृपस्य**–राजाधिराज अथवा मिट्टी के पके हुए घड़े की तरह परिणमन करने वाले आप हैं, **चित्रं**–आश्चर्य है कि घट तो विपाक से युक्त होता है तब प्राणियों को पार लगाता है। परन्तु आप, **कर्म विपाक शून्यः**–कर्म विपाक से रहित हो फिर भी संसारी प्राणियों को तारते हो।

भावार्थ– हे देव! जिस तरह जल में अधोमुख पक्का घड़ा अपनी पीठ पर आरूढ़ मनुष्यों को जलाशय से पार कर देता है, उसी तरह भव समुद्र से पराङ्मुख हुए आप अपने अनुयायी भव्य जनों को तार देते हो, सो यह उचित ही हैं परन्तु घड़ा तो जलाशय से वही पार कर सकता है जो विपाक सहित है परन्तु आप तो विपाक रहित होकर तारते हैं यह आप की अचिन्त्य महिमा है।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो देवाणुप्पियाणं घोर बंभयारीणं।

पद्यानुवाद

भव समुद्र से विमुख सदा, प्रभु जी तारण हार अहा।
अनुगामी भवि तिरते हैं, निश्चय ही यह सत्य कहा।।
घट विपाक से युक्त विभो, कर्म विपाक रहित तुम हो।
हे त्रिभुवन अधिपति फिर भी, घट सम तारण हार अहो।।
हम भक्त तुमको निज घट में पाये रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं निजपृष्ठलग्न भयतारकाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

असंभव कार्य साधक

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक! दुर्गतस्त्वं,
किं वाक्षर प्रकृति–रप्यलिपिस्त्वमीश!
अज्ञानवत्यपि सदैव कथञ्चिदेव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकास हेतुः।।30।।

अन्वयार्थ–जनपालक–हे जनपालक!, **त्वं विश्वेश्वरः**–आप तीन लोक के स्वामी हैं। **अपि**–फिर भी, **दुर्गतः किं**–दरिद्र क्यों हो? **ईश त्वं**–हे स्वामी तुम, **अक्षर प्रकृति अपि**– अक्षर स्वभाव वाले होकर भी, **अलिपिः**–लिपिबद्ध करने की क्षमता से रहित, **किं वा**–क्यों हो अथवा, **अज्ञानवति अपि**–अज्ञानवान होने पर भी, **त्वयि सदैव**–आप में निरंतर, **कथंचित्**–किस प्रकार से, **विश्व विकास हेतुः**–विश्व को प्रकाशित करने में कारणभूत, **ज्ञानं किं स्फुरति**–ज्ञान क्यों स्फुरायमान हो रहा है?

भावार्थ– हे जगपालक! आप तीनों लोकों के स्वामी होकर भी निर्धन हैं अक्षर स्वभाव (अविनाशी) होकर भी लेखन क्रिया रहित हैं इसी प्रकार से अज्ञानी होकर भी त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती पदार्थों के जानने वाले ज्ञान से विभूषित हैं। जिस अलंकार में शब्द से विरोध प्रतीत होने पर भी वस्तुतः विरोध नहीं होता उसे विरोधाभास अलंकार कहते हैं। हे भगवन्! आप त्रिलोकीनाथ हैं और कठिनाई से जाने जा सकते हैं अविनश्वर स्वभाव वाले होकर भी आकार रहित हैं अज्ञानी मनुष्यों की रक्षा करने वाले आप में सदा केवलज्ञान प्रकाशित रहता है।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो अपुव्वबल पदाईणं आमोसहि पत्ताणं।

पद्यानुवाद

जब त्रिभुवन के हो ईश्वर, फिर निर्धन कैसे प्रभुवर।
होते न लिपिबद्ध कभी, है स्वभाव जबकि अक्षर।।
नहीं आपको मति श्रुतज्ञान हुआ प्रगट इससे अज्ञान।
सतत् स्फुरित फिर कैसे विश्व प्रकाशी केवलज्ञान।।
जनपालक कैसे फिर आप कहाये रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं विस्मयनीय मूर्तये क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

शुभाशुभ प्रश्न दर्शक

प्राग्भार सम्भृतन भांसि रजांसि रोषा–
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायापि तैस्तव न नाथ! हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभि–रयमेव परं दुरात्मा।।31।।

अन्वयार्थ–नाथ–हे स्वामिन्! **रोषात् शठेन कमठेन यानि**–पूर्वोपाजित राग द्वेष के कारण मूर्ख कमठ के द्वारा जो, **प्राग्भार सम्भृतन भांसि रंजासि**–सम्पूर्ण रूप से व्याप्त किया है। आकाश को जिसने ऐसी रज (धूल) **उत्थापितानि**–आपके प्रति उड़ाई थी परंतु, **तैःतव छाया**–उस धूलि के द्वारा आपकी छाया भी, **अपि न हता**–भी नहीं ढक सका, **तु**–आपके प्रतिबिंब को भी स्पर्श नहीं कर सका, **हताशः**–परन्तु नष्ट हो गई है आशा जिसकी अर्थात् निराश होकर, **अयं दुरात्मा**–वह दुष्ट कमठ, **एव अमीभिः ग्रस्तः**–ही उस कर्मरूपी धूलि के द्वारा मलीन हुआ।

भावार्थ– हे जितशत्रो! आपके पूर्व भव के बैरी कमठ ने आप पर भारी धूल उड़ा कर उपसर्ग किया परन्तु वह धूलि आपके शरीर की छाया भी नष्ट नहीं कर सकी, प्रत्युत तिरस्कार की दृष्टि से किया गया उसका यह कार्य तो दूर रहे किंतु विफल मनोरथ वाला हताश वह दुष्ट कमठ का जीव ही कर्मरूपी रज कणों से कस कर जकड़ा गया।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो इट्ठ विण्णत्तिदावयाणं खेलोसहिं पत्ताणं।

पद्यानुवाद

पूर्व कर्म के अनुसारा, नाथ! कमठ शठ के द्वारा।
किया गया उपसर्ग बहुत, कर न सका कुछ बेचारा।।
गगन धूलि से नहलाया, छू न सका तेरी छाया।
कर्म धूलि से हुआ मलिन और निराशा को पाया।।
अपनी करनी पर ये खुद पछतायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं कमठोत्थापित धूल्युपद्रव जिताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

दुष्टता प्रतिरोधी

यद् गर्जदू र्जितघनौघमद भ्रभीम्,
भ्रश्यत्तडिन्मु–सलमां–सलघोर धारं।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन! दुस्तर वारि कृत्यं।।32।।

अन्वयार्थ–जिन!– हे जिनेश्वर!, **दैत्येन यत्**–कमठ के जीव दैत्य के द्वारा जो, **गर्जदूर्जित घनौघं**–भयंकर गर्जना वाले मेघों का समूह है जिसमें ऐसी, **अदभ्रभीमं**–अत्यंत भयंकर, **भ्रश्यत्तडित मुसल मांसल घोर धारं**–चमकती हुई कड़कती हुई बिजली के साथ घोर शब्द करती हुई मूसलधार है जिसमें ऐसी, **दुस्तर वारि**–दुस्तर पानी की वर्षा, **मुक्तं अथ**–की थी अथवा, **तेन**–उस मूसलाधार पानी के द्वारा, **तस्य एव**–उस दैत्य के लिए ही, **दुस्तर वारि कृत्यं**–दुस्तर तलवार का काम, **दध्रे**–किया गया।

भावार्थ– हे महाबल! आप पर मूसलाधार पानी वर्षा कर कमठ ने जो महान् उपसर्ग किया था उससे आपका तो कुछ नहीं बिगड़ा परंतु उसने स्वयं अपने लिए तलवार की घाव की तरह महान कर्मबंध किया जिससे उसे उस भव व अनेक भवों में दु:ख उठाने पड़े।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठमदणासयाणं जल्लोसहि पत्ताणं।

पद्यानुवाद

कमठ दैत्य बनकर आया, मेघ गर्जना को लाया।
चम चम बिजली मूसलधार, दुस्तर पानी बरसाया।।
सो वह पानी मूसलधार, बना कमठ को ही तलवार।
पाप कर्म का बंध किया, जो भवसागर का विस्तार।।
प्रभु आप फिर भी करुणा बरसायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं कमठकृत जलधारोपसर्ग निवारकाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

उल्कापाताति वृष्ट्यानावृष्टि निरोधक

ध्वस्तोर्ध्व केश विकृता कृति मर्त्य मुण्ड–
प्रालम्ब भृद भयद वक्त्र विनिर्य–दग्नि:।
प्रेतव्रज: प्रतिभवन्तम पीरितो य:,
सोऽस्याऽभवत् प्रतिभवं भवदु:ख हेतु:।।33।।

अन्वयार्थ–ध्वस्तोर्ध्व केश विकृता मर्त्य मुण्ड प्रालम्बभृत्–इधर–उधर बिखरे हुए तथा ऊपर को उठे हुए विकराल केशों के समूह से विकृत आकृति चिन्हों से ऐसे मनुष्य के मुण्डों की मालाओं को धारण किये हुए हैं। **भयद वक्त्र विनिर्यदग्नि:–** जिनके भयंकर मुखों से अग्नि निकल रही हैं ऐसे, **य:**–जो, **प्रेतव्रज:**–भूत पिशाचों का समूह, **भवन्तं**–आपके प्रति, **ईरित:**–प्रेरित किया गया था, **स:**–वह प्रेतों का समूह, **अपि**–भी, **अस्य**–इस दैत्य कमठ के जीव को, **प्रतिभवं**–भव भव में, **भव दु:ख हेतु**–संसार दुख का कारण, **अभवत्**–हुआ था।

भावार्थ– हे उपसर्ग विजयन्! कमठ के जीव ने आपको कठोर तपस्या से चलायमान करने की खोटी नीयत से जो विकराल पिशाचों का समूह आपकी ओर उपद्रव करने के लिये दौड़ाया था, उससे आपका कुछ भी बिगाड़ नहीं हुआ परंतु उस क्रूर कमठ को ही अनेक खोटे कर्मों का बंध हुआ, जिससे उसे भव भव में असह्य यातनायें झेलनी पड़ी।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो असणि पातादि वारयाणं सव्वोसहि पत्ताणं।

पद्यानुवाद

मुख से अग्नि ज्वालायें, गले मुण्ड की मालायें।
बिखरे केश कुरूप महा, अजगर भी निगला चाहें।।
भूत पिशाचों का तांडव, मूरख कमठासुर दानव।
खुद भव दु:ख बढाया था, सही यातनायें भव–भव।।
पारस प्रभु जैसी हम क्षमा जगायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं कमठकृत पैशाचिकोपद्रव जयनशीलाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

भूत पिशाच पीड़ा तथा शत्रुभय नाशक

धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्य:-
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्य कृत्या:।
भक्त्योल्लसत्पुलक पक्ष्मल देह देशा:,
पाददृयं तव विभो! भुवि जन्म भाज:।।34।।

अन्वयार्थ-भुवनाधिप- हे तीन लोक के अधिपति!, **ये जन्मभाज:**-जो संसारी प्राणी, **विधु-तान्यकृत्या:-** सम्पूर्ण कार्य संबंधी चिन्ता को छोड़कर, **भक्त्या-** भक्ति से, **उल्लसत्पुलक पक्ष्मलदेह देशा:**-तुम्हारे गुणानुराग के हर्ष से सारा शरीर रोमांचित हो गया है ऐसे होकर, **विधिवत्**-शास्त्रोक्त विधि से, **त्रिसंध्यं तव-** त्रिकाल आपके, **पादयुगं**-दोनों चरणों की, **आराधयंति**-आराधना करते हैं। **विभो भुवि**-हे भगवन्! पृथ्वी पर, **तें एव धन्या:**-वे ही धन्य हैं।

भावार्थ- हे त्रिलोकीनाथ! जो प्राणी भक्ति से उत्पन्न रोमांचों से पुलकित होकर सांसारिक अन्य कार्यों को छोड़कर तीनों संध्याओं में विधिपूर्वक आपके चरणों की आराधना करते हैं संसार में वे ही धन्य हैं।

जाप-ॐ ह्रीं अर्हं णमो भूतवाहावहारयाणं विट्टोसहि पत्ताणं।

पद्यानुवाद

हे त्रिलोक अधिपति भगवन्, धन्य धन्य संसारी जन।
छोड़ जगत् जंजाल सभी, आप भक्ति में हुये मगन।।
हो गुणानुरागी नत भाल, शास्त्र विधि से करें त्रिकाल।
द्वय चरणों की आराधन, पृथ्वी पर वे भक्त निहाल।।
प्रभु ऐसी भक्ति हम भी नित पायें रे...

अर्घ्य- ॐ ह्रीं धर्मवंदिताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

मृगी उन्माद अपस्मार विनाशक

अस्मिन् नपार भव वारि निधौ मुनीश!
मन्ये न मे श्रवण गोचरतां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तव गोत्र पवित्र-मन्त्रे,
किं वा विपद्-विषधरी सविधं समेति।।35।।

अन्वयार्थ-मुनीश-हे मुनियों के नाथ! **मन्ये अस्मिन्**-मैं ऐसा मानता हूँ कि इस, **अपार भव वारिनिधौ**-अपार संसार समुद्र में आप, **न श्रवण गोचरतां गतोऽसि-** मेरे कर्णगोचर नहीं हुये हैं (क्योंकि), **तु**-निश्चय से, **तव गोत्र पवित्र मन्त्रे**-आपके नामरुपी पवित्र मंत्र के, **आकर्णिते सति**-सुने जाने पर, **विपद् विषधरी**-विपत्ति रुपी नागिन, **किं वा**-क्या, **सविधं**-समीप, **समेति**-आती है? अर्थात् नहीं।

भावार्थ- हे प्रभो! इस अपार संसार सागर में मैंने आपका पवित्र नाम रुपी मंत्र नहीं सुना अर्थात् आपकी उत्तम कीर्ति मेरे कानों द्वारा नहीं सुनी गई, क्योंकि निश्चय से यदि आपका नामरुपी पवित्र मंत्र मैंने सुना होता तो क्या विपत्ति रुपी नागिन मेरे समीप आती? अर्थात् कभी नहीं आती।

जाप-ॐ ह्रीं अर्हं णमो मिगीरोअ वारयाणं मण बलीणं।

पद्यानुवाद

नाथ मानता हूँ यह मैं, इस अपार भव सागर में।
कभी भक्ति से नहीं सुना, नाम आपका प्रभु मैंने।।
नाम आपका पावन मंत्र जो सुनले हो ही वही स्वतंत्र।
विपद सर्पिणी आ सकती, क्या समीप करने परतंत्र।।
प्रभु नाम तेरा हम नित ही ध्यायें रे...

अर्घ्य- ॐ ह्रीं पवित्र नामधेयाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

सर्व वशीकरण

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव!
मन्ये मया महित–मीहित–दान–दक्षम्।
तेनेह जन्मनि मुनीश! परा भवानां,
जातो निकेतन महं मथिता शयानाम्।।36।।

अन्वयार्थ–मुनीश– हे जिनवर! **मन्ये**–मैं मानता हूँ कि, **मया**–मेरे द्वारा, **जन्मान्तरे**–भव भवान्तरों में, **अपि**–भी, **ईहितदान दक्षं**–इच्छित फल को देने में समर्थ, **तव**–आपके, **पादयुगं महितं न**–चरण कमलों की पूजा नहीं की, **देव!**–हे देव, **तेन अहं**–इसीलिए मैं, **इह जन्मनि**–इस जन्म में, **मथिताशयानां**–आडोलित किया है चित्त को अर्थात् हृदयभेदी, **ऐसी पराभवानां**–आपदाओं, तिरस्कारों का, **निकेतनं**–घर, **जातः**–हुआ हूँ।

भावार्थ– हे वरद! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पहले के अनेक जन्मों में मैंने मनोवांछित फलों के देने में पूर्ण समर्थ आपके पवित्र चरणों की पूजा नहीं की, इसी से इस जन्म में मैं मर्मभेदी तिरस्कारों का घर बना हुआ हूँ।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो बाल वसीयरण कुसलाणं वयण बलीणं।

पद्यानुवाद

हे मुनीश! भव भव में भी, इच्छित फल देने वाली।
तब द्वय पावन चरणों की, पूजा–अर्चा कभी न की।।
अतः नहीं इस भव सम्मान, तिरस्कार का हूँ स्थान।
राग द्वेष की भँवरों से, चित्त क्षुभित है कष्ट महान्।।
प्रभु की पूजा से इच्छित फल पायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं पूतपादाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

सकल कष्ट निवारक

नूनं न मोह तिमिरा वृत लोचनेन,
पूर्वं विभो! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि।
मर्माविधो विधुरयंति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत् प्रबंध–गतयः कथ–मन्य–थैते।।37।।

अन्वयार्थ–नूनं भो!–हे भगवन्! निश्चय से, **मोहतिमिरावृत लोचनेन**–मोह रुपी अंधकार से आच्छादित नेत्र वाले मैंने, **पूर्व सकृत अपि**–पूर्व में एक बार भी, **न प्रविलोकितोऽसि**–अवलोकन नहीं किए गये हो, **अन्यथा**–यदि एक बार भी आपके भाव विभोर होकर दर्शन कर लेता तो, **हि**–निश्चय से, **प्रोद्यत् प्रबंध गतयः**–जिनमें कर्मबन्ध की गति बढ़ रही है ऐसे, **ऐते**–ये, **मर्मविधः**–मर्मभेदी, **अनर्थाः**–अनर्थ, **माम्**–मुझे, **कथं विधुरयंति**–दुःखी करते अर्थात् नहीं करते।

भावार्थ– हे कष्ट निवारक देव! मोहरुपी सघन अंधकार से आच्छादित नेत्र सहित मैंने पूर्व जन्मों में कभी एक बार भी निश्चय पूर्वक आपको अच्छी तरह नहीं देखा, ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है। यदि मैंने कभी आपका दर्श किया होता तो उत्कृष्ट संसार वर्धक मर्म भेदी अनर्थ मुझे क्यों दुखी करते? क्योंकि आपके दर्शन करने वालों को कभी कोई भी अनर्थ दुःख नहीं पहुँचा सकता।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वराजपयावसीय कुसलाणं कायबलीणं।

पद्यानुवाद

मोह तिमिर से ढके नयन, अतः पूर्व में हे स्वामिन्!
एक बार भी भाव सहित, नहीं किये प्रभु तव दर्शन।।
यदि दर्श प्रभु हो जाता, बंध कर्म का खो जाता।
कर्मोदय से जन्म जरा मृत्यु, दुःख भला कैसे आता।।
प्रभु दर्श करके हम मोह हटायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं दर्शनियाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

विषम ज्वर विघातक

नि:संख्य–सार–शरणं शरणं शरण्य–
मासाद्य सादित–रिपु प्रथितावदानं।
त्वत्पाद पंकजमपि प्रणिधान–वन्ध्यो,
वन्ध्योऽस्मि चेद्भुवन पावन! हा हतोऽस्मि।।40।।

अन्वयार्थ–भुवन पावन– हे संसार को पवित्र करने वाले भगवन्! **नि:संख्यसारशरणं–**असंख्यात श्रेष्ठ पदार्थों के घर की, **शरणं–**रक्षा करने वाले, **शरण्यम्–**शरणागत प्रतिपालक और **सादित रिपु प्रथितावदानम्–**कर्म शत्रुओं के नाश से प्रसिद्ध है पराक्रम जिनका ऐसे, **त्वत् पाद पङ्कजं–**आपके चरण कमलों को, **आसाद्य अपि–**पाकर भी, **प्रणिधानवन्ध्य:–**उनके ध्यान से रहित हुआ मैं, **वन्ध्य: अस्मि–**अभागा फलहीन हूँ और **तत्–**उससे, **हा–**खेद है कि मैं, **हत: अस्मि–**नष्ट हुआ जा रहा हूँ अर्थात् कर्म मुझे दुखी कर रहे हैं।

भावार्थ– हे भगवन्! आपके पवित्र और दयालु चरणों को पाकर भी, मैं जो उनका ध्यान नहीं कर रहा हूँ, उससे मेरा जन्म निष्फल जा रहा है और मैं कर्मों द्वारा दुखी किया जा रहा हूँ।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो उण्हसीय बाह्म विणासयाणं मधु सवीणं।

पद्यानुवाद

हे त्रिलोक पावन कर्ता!, शरणागत के दुख हर्ता।
जग विख्यात तेरी महिमा, भवि के कर्म दलन कर्ता।।
पाकर तेरे चरण कमल, कर न सका प्रभु भाव विमल।
तव गुण चिंतन ध्यान बिना, यह जीवन होता निष्फल।।
कर्मो ने मारा हा! खेद जतायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं सौभाग्यदायक पद कमल युगलाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

अस्त्र शस्त्र विघातक

देवेन्द्रवंद्य! विदिता–खिल–वस्तु–सार!
संसार–तारक! विभो! भुवनाधिनाथ!
त्रायस्व देव! करुणाह्रद! मां पुनीहि,
सीदन्त–मद्य भय–दव्य सनाम्बुराशे:।।41।।

अन्वयार्थ–देवेन्द्र वंद्य–हे इन्द्रों के वंदनीय!, **विदिताखिल वस्तुसार–**हे सब पदार्थों के रहस्य को जानने वाले!, **संसार तारक–**हे संसार से तारने वाले!, **विभो–**हे विभो! **भुवनाधिनाथ–**हे तीनों लोक के स्वामिन्! **करुणाह्रद–**हे दया के सरोवर! **देव–**देव! **अद्य–**आज, **सीदन्तं–**तड़पते हुए, **माम्–**मुझको, **भयदव्यसनाम्बुराशे:–**भयंकर दुखों के समुद्र से, **त्रायस्व–**बचाओ, और **पुनाहि–**पवित्र करो।

भावार्थ– भगवन्! आप हर तरह से समर्थ हैं इसलिये आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे इस दु:ख समुद्र में डूबने से बचाइये और हमेशा के लिए कर्म मैल से रहित कर पवित्र कीजिये।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो वप्पलाहकारयाणं अमइ सवीणं।

पद्यानुवाद

हे विदिताखिल वस्तु सार! हे देवेन्द्र पूज्य! जगतार!
हे त्रिभुवन पति! हे स्वामिन्! है फरियाद यही दरबार।।
भयदायी दुख सागर में, आज दुखों का हूँ घर मैं।
करो सुरक्षित करो पवित्र, दया सिंधु तव चाकर मैं।।
फरियादी दर से खाली नहिं जाये रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं सर्व पदार्थ वेदिने क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

विषम ज्वर विघातक

नि:संख्य-सार-शरणं शरणं शरण्य-
मासाद्य सादित-रिपु प्रथितावदानं।
त्वत्पाद पंकजमपि प्रणिधान-वन्ध्यो,
वन्ध्योऽस्मि चेद्भुवन पावन! हा हतोऽस्मि।।40।।

अन्वयार्थ-भुवन पावन- हे संसार को पवित्र करने वाले भगवन्! **नि:संख्यसारशरणं**-असंख्यात श्रेष्ठ पदार्थो के घर की, **शरणं**-रक्षा करने वाले, **शरण्यम्**-शरणागत प्रतिपालक और **सादित रिपु प्रथितावदानम्**-कर्म शत्रुओं के नाश से प्रसिद्ध है पराक्रम जिनका ऐसे, **त्वत् पाद पङ्कजं**-आपके चरण कमलों को, **आसाद्य अपि**-पाकर भी, **प्रणिधानवन्ध्य:**-उनके ध्यान से रहित हुआ मैं, **वन्ध्य: अस्मि**-अभागा फलहीन हूँ और **तत्**-उससे, **हा**-खेद है कि मैं, **हत: अस्मि**-नष्ट हुआ जा रहा हूँ अर्थात् कर्म मुझे दुखी कर रहे हैं।

भावार्थ- हे भगवन्! आपके पवित्र और दयालु चरणों को पाकर भी, मैं जो उनका ध्यान नहीं कर रहा हूँ, उससे मेरा जन्म निष्फल जा रहा है और मैं कर्मों द्वारा दुखी किया जा रहा हूँ।

जाप-ॐ ह्रीं अर्हं णमो उण्हसीय बाह्य विणासयाणं मधु सवीणं।

पद्यानुवाद

हे त्रिलोक पावन कर्ता!, शरणागत के दुख हर्ता।
जग विख्यात तेरी महिमा, भवि के कर्म दलन कर्ता।।
पाकर तेरे चरण कमल, कर न सका प्रभु भाव विमल।
तव गुण चिंतन ध्यान बिना, यह जीवन होता निष्फल।।
कर्मो ने मारा हा! खेद जतायें रे...

अर्घ्य- ॐ ह्रीं सौभाग्यदायक पद कमल युगलाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

अस्त्र शस्त्र विघातक

देवेन्द्रवंद्य! विदिता-खिल-वस्तु-सार!
संसार-तारक! विभो! भुवनाधिनाथ!
त्रायस्व देव! करुणाह्रद! मां पुनीहि,
सीदन्त-मद्य भय-दव्य सनाम्बुराशे:।।41।।

अन्वयार्थ-देवेन्द्र वंद्य-हे इन्द्रों के वंदनीय!, **विदिताखिल वस्तुसार**-हे सब पदार्थों के रहस्य को जानने वाले!, **संसार तारक**-हे संसार से तारने वाले!, **विभो**-हे विभो! **भुवनाधिनाथ**-हे तीनों लोक के स्वामिन्! **करुणाह्रद**-हे दया के सरोवर! **देव**-देव! **अद्य**-आज, **सीदन्तं**-तड़पते हुए, **माम्**-मुझको, **भयदव्यसनाम्बुराशे:**-भयंकर दुखों के समुद्र से, **त्रायस्व**-बचाओ, और **पुनाहि**-पवित्र करो।

भावार्थ- भगवन्! आप हर तरह से समर्थ हैं इसलिये आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे इस दु:ख समुद्र में डूबने से बचाइये और हमेशा के लिए कर्म मैल से रहित कर पवित्र कीजिये।

जाप-ॐ ह्रीं अर्हं णमो वप्पलाहकारयाणं अमइ सवीणं।

पद्यानुवाद

हे विदिताखिल वस्तु सार! हे देवेन्द्र पूज्य! जगतार!
हे त्रिभुवन पति! हे स्वामिन्! है फरियाद यही दरबार।।
भयदायी दुख सागर में, आज दुखों का हूँ घर मैं।
करो सुरक्षित करो पवित्र, दया सिंधु तव चाकर मैं।।
फरियादी दर से खाली नहिं जाये रे...

अर्घ्य- ॐ ह्रीं सर्व पदार्थ वेदिने क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

स्त्री संबंधी समस्त रोग शामक

यद्यस्तिनाथ! भवदङ्घ्रि सरो-रुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि संतत-संचितायाः।
तन्मे त्वदेक-शरणस्य शरण्य! भूयाः,
स्वामी! त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि।।42।।

अन्वयार्थ-नाथ!- हे नाथ! **त्वदेक शरणस्य मे**-आपकी ही एक शरण जिसको, ऐसे मुझे मेरे, **संतत संचितायाः**-निरंतर संचित की हुई, **भवदंघ्रि सरोरुहाणां**-आपके चरण सरोज की, **भक्तेः**-भक्ति का यदि, **किमपि फलं**-कुछ भी फल, **अस्ति तत्**-है तो, **शरण्य!**-हे आश्रय दाता भगवन्! **अत्र**-इस, **भुवने**-लोक में और **भवान्तरे अपि**-परलोक में भी, **त्वमेव स्वामी भूयाः**-आप ही (मेरे) स्वामी होवें।

भावार्थ- हे भगवन्! स्तुति कर मैं आपसे अन्य किसी फल की चाह नहीं रखता। सिर्फ यह चाहता हूँ कि आप ही मेरे हमेशा स्वामी रहें। अर्थात् जब तक मुझे मोक्ष प्राप्त नहीं होता है तब तक आप ही इस लोक व परलोक में मेरे स्वामी रहें। जिससे कि मैं आपको अपना आदर्श बनाकर अपने को आपके समान बना सकूँ।

जाप-ॐ ह्रीं अर्हं णमो इत्थिरत्तरोअ णासयाणं अक्खीण महाणसयाणं।

पद्यानुवाद

नाथ तुम्हीं हो एक शरण, आलम्बन के योग्य चरण।
चरण कमल की भक्ति का, यदि कुछ भी फल हो स्वामिन्।।
तो इस भव पर भव-भव में नाथ आप स्वामिन् होवें।
तुम सम ही बन सकूँ प्रभो, भव सागर का दुःख खोवें।।
हे नाथ! तुमको न कभी भुलायें रे...

अर्घ्य- ॐ ह्रीं पुण्य बहुजनसेव्याय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

सर्व बंधन मोचक

इत्थं समाहित-धियो विधिवज् जिनेन्द्र!
सान्द्रोल्ल-सत्पुलक-कन्चुकि-ताङ्ग-भागाः।
त्वद-बिम्ब-निर्मल-मुखाम्बुज-बद्धलक्ष्याः,
ये संस्तवं तव विभो! रचयंति भव्याः।।43।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र-हे जिनेन्द्र भगवान्, **इत्थं**-इस प्रकार, **समाहितधियः**-सावधान बुद्धि वाले, **त्वद्विम्बनिर्मलमुखाब्ज बद्धलक्ष्याः**-आपके निर्मल मुख कमल पर बाँधा है लक्ष्य जिन्होंने ऐसे तथा, **सान्द्रोल्लसत् पुलक कंचुकिताङ्गभागाः**-सघन रूप से उठे हुये रोमांचों से व्याप्त है शरीर के अवयव जिनके ऐसे, **सन्तः**-होते हुए, **विधिवत्**-विधिपूर्वक, **तव संस्तवं**-आपका स्तोत्र, **रचयंति**-रचते हैं।

भावार्थ- हे जितेन्द्रिय जिनेश्वर! जो भव्यजन उपरोक्त प्रकार से प्रमाद रहित होकर आपके दैदीप्यमान मुखारविंद की ओर टकटकी लगाकर और सघन तथा उठे हुए रोमाञ्चरुपी वस्त्र पहिन कर विधिपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं।

जाप-ॐ ह्रीं अर्हं णमो बंदि मोअगाणं सव्वसिद्धायदणाणं।

पद्यानुवाद

इस प्रकार हे जिन भगवान्! सम बुद्धि भवि करते ध्यान।
निर्मल मुख सरोज अपलक, लखते रहते लक्ष्य महान।।
रोम रोम होता पुलकित, अंग अंग होता विलसित।
रचते हैं स्तोत्र अहा, विधिपूर्वक होकर प्रमुदित।।
भावों की कलियाँ ये रोज खिलायें रे...

अर्घ्य- ॐ ह्रीं जन्म मृत्यु निवारकाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

वैभव वर्धक

जन नयन कुमुदचन्द्र! प्रभास्वराः स्वर्ग सम्पदो भुक्त्वा।
तेवि गलित–मल निचया अचिरान् मोक्षं प्रपद्यन्ते।।44।।

अन्वयार्थ–जन नयन कुमुद चन्द्र– लोक के नयन रुपी कुमुदों को विकसित करने के लिये चन्द्रमा की तरह शोभायमान देव! **प्रभास्वराः**–दैदीप्यमान, **स्वर्ग सम्पदः**–स्वर्ग की सम्पत्तियों को, **भुक्त्वा**–भोगकर, **विगलितमलनिचयाः**–अष्ट कर्म रुपी मल समूह से रहित हो भव्य जीव, **अचिरात्**–शीघ्र ही, **ते मोक्षं प्रपद्यन्ते**–वे मोक्ष को पाते हैं।

भावार्थ– वे भव्य देवलोक की सुखकर विविध सम्पत्तियों को भोग कर अष्ट कर्म रुपी मल को आत्मा से दूर कर अविलम्ब अविनाशी मोक्ष सुख को पाते हैं।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खय सुहदायगस्य वड्ढमाण बुद्धि रिसिस्य।

पद्यानुवाद

कुमुद रुप जो लोकनयन, उन्हें चन्द्र सम हो भगवन्।
स्वर–व्यंजन की आभा से, स्तुति रचते जो भविजन।।
स्वर्ग सम्पदा वरते हैं, अष्ट कर्म मल हरते हैं।
मुक्ति महल में पग अपना, अहा शीघ्र ही धरते हैं।।
अविनाशी सुख के स्वामी कहलायें रे...

अर्घ्य– ॐ ह्रीं कुमुदचन्द्र यति सेवितपादाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

विंशति दल कमल पूजा

समवसरण की अनुपम शोभा, भविजन को लगती प्यारी।
सिंहासन पर अधर विराजित, वीतराग छवि मनहारी।।
पार्श्वप्रभु की दिव्य अर्चना, कल्याणों का मंदिर है।
सुख–दुःख में जो तुझे पुकारे, प्रभु तू उसके अंदर है।।

बीस कमल दल भावकर, समुदित अर्घ बनाया।
निज आतम अनुभूति संग, अर्पित चरण चढ़ाया।।

ॐ ह्रीं हृदयस्थिताय विंशतिदल कमलाधिपतये क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

शतमखनुतपादं, शान्तकर्मारिचक्रं,
शमदमयमगेहं, शङ्करं सिद्धकार्यम्।
सरसिजदलनेत्रं, सर्वलौकान्तिकार्च्य,
सकलगुणनिधानं, संस्तवे पार्श्वदेवम्।।

भवजलनिधि–पतितामुत्तरर्ण, देवमनन्तगुणं जनशरणं।
चिद्रूपं बहुगुणसमुदायं, उत्तमगुणगण–हतभवपाशं।।

रम्यारम्य–गुणस्तवनीयं, कर्मबन्ध–निर्बन्धमजेयं।
दुष्टोपद्रव नाशन–वीरं, सुध्येयं, जितमन्मथशूरं।।

गरिमाक्रोधमहानल–कुशदं, हृदि मृग्यं महतामतिविशदं।
कर्मदाहतीव्राग्नि–मतुल्यं, गतपरमात्मपद गतशल्यं।।

संसृतिविषहरणामृत–कूपं, पदनतनाग–नरामर–भूपं।
तुङ्गाशोक–महीरूह–सरितं, उद्गमवृष्टियुतं सुरमहितं।।

योजनमितदिव्यध्वनिननदं, सुरचामर–वीज्यं हतविपदं।
पीठत्रय–नायकमघमथनं, हरितविभावलय गुणसदनं।।

दानवारिदुन्दुभि–सद्ध्वानं, श्वेतातपवारण–गुणमानं।
मणिहेमार्जुन–शालत्रितयं, पदनतभक्त–जनावनसुदयं।।

पृष्ठलग्न–जगतारण–दक्षं, विस्मयनीयं हतमदकक्षं।
हतकमठोत्थापित–बहुधूलि, जित मुसलोपम–जलधारालिं।।

हतपैशाचिक विप्लवजालं, नतधर्मिष्ठजनं गुणमालं।
पूतनामधेयं शिवभाजं, वरपवित्रपादं जिनराजं।।

दर्शनीयमपहत घनपापं, भक्तिहीन–भविमध्यमरूपं।
भक्तिनम्रजन–वत्सलवन्तं, भूरिभाग्य–दायकमरिहन्तं।।

लोकालोक पदार्थविवेद्यं, पदनतसुकृति–जनैरभिवन्द्यं।
जन्मजरा–मरणच्युतदेवं, 'कुमुदचन्द्र' यतिकृतपदसेवम्।।

विश्वादिसेनान्वयव्योमतिग्मं, सद्भव्यवारांनिधिधर्मचन्द्रं।
देवेन्द्र सत्कीर्तित–पादयुग्मं, श्रीपार्श्वनाथंप्रणमामिभक्त्या।।

ॐ ह्रीं श्रीं ऐं अर्हं क्रूरकमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय समुच्च्य जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

यः प्राग्विप्र इभोऽनु द्वादशदिवि, स्वर्गी ततः खेचरः।
पश्चादच्युतकल्पजो निधिपतिः, गैवेयके मध्यमे।।
इन्द्रोऽभूत्तत ईशतां शुभवचः, आनन्दनामानते।
ग्रीर्वाणस्तत उग्रवंशतिलकः पार्श्वट् वो रक्षातत्।।

।।इत्याशीर्वादः, परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।।

गुणे वेदाङ्गचन्द्राब्दे शाके फाल्गुनमासके।
कारंजाख्यपुरे नूनं, पूजेयं सुविनिर्मिता।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः।
इति मंत्रेण लवंगैरष्टोत्तर शतं जाप्यं विधेयम्।

कल्याण मंदिर स्तोत्र–जाप मंत्र

1. ॐ ह्रीं भवसमुद्रतरणे पोतायमानकल्याण मंदिर स्वरूपाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
2. ॐ ह्रीं कमठस्मय धूमकेतु पमाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
3. ॐ ह्रीं त्रैलोक्याधीशाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
4. ॐ ह्रीं सर्वपीड़ा निवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
5. ॐ ह्रीं सुखविधायकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
6. ॐ ह्रीं अव्यक्तगुणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
7. ॐ ह्रीं भवाटवी निवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
8. ॐ ह्रीं कर्माहिबंध मोचनाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
9. ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवहरणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
10. ॐ ह्रीं भवोदधितारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
11. ॐ ह्रीं हुतभुग्भयनिवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
12. ॐ ह्रीं हृदयधार्यमाण भव्यगण तारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
13. ॐ ह्रीं कर्मचौर विध्वंसकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
14. ॐ ह्रीं हृदयाम्बुजान्वेषिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
15. ॐ ह्रीं जन्ममरण रोग हराय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
16. ॐ ह्रीं विग्रह निवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
17. ॐ ह्रीं आत्मस्वरूपध्येयाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
18. ॐ ह्रीं परवादी देवस्वरूप ध्येयाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
19. ॐ ह्रीं अशोक प्रातिहार्योप शोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
20. ॐ ह्रीं सुरपुष्पवृष्टि प्रातिहार्योप शोभितायश्री पार्श्वनाथाय नमः।
21. ॐ ह्रीं अजरामर दिव्यध्वनि प्रातिहार्योप शोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।

22. ॐ ह्रीं चामर प्रातिहार्योप शोभितमाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
23. ॐ ह्रीं सिंहासन प्रातिहार्योप शोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
24. ॐ ह्रीं भामण्डल प्रातिहार्य प्रभास्वते श्री पार्श्वनाथाय नमः।
25. ॐ ह्रीं दुन्दुभि प्रातिहार्योप शोभिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
26. ॐ ह्रीं छत्रत्रय प्रातिहार्य विराजिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
27. ॐ ह्रीं पीठत्रय विराजिताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
28. ॐ ह्रीं पुष्पमालानिषेवित चरणाम्बुजाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
29. ॐ ह्रीं संसार सागर तारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
30. ॐ ह्रीं अद्‌भुत गुण विराजितरूपाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
31. ॐ ह्रीं रजोवृष्टययक्षोभ्यास श्री पार्श्वनाथाय नमः।
32. ॐ ह्रीं कमठदैत्यमुक्त वारिधाराराक्षोभ्याय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
33. ॐ ह्रीं परवादीस्वरूपध्येयाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
34. ॐ ह्रीं त्रिकालपूजनीयाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
35. ॐ ह्रीं आपन्निवारकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
36. ॐ ह्रीं सर्वपराभवहरणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
37. ॐ ह्रीं सर्वमनर्थमथनाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
38. ॐ ह्रीं सर्वदु:खहराय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
39. ॐ ह्रीं जगज्जीव दयालवे श्री पार्श्वनाथाय नमः।
40. ॐ ह्रीं श्री सर्वशांतिकराय श्री जिनचरणाम्बुजाय पार्श्वनाथाय नमः।
41. ॐ ह्रीं जगन्नाथकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
42. ॐ ह्रीं अशरणशरणाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
43. ॐ ह्रीं चित्तसमाधि सुसेविताय श्री पार्श्वनाथाय नमः।
44. ॐ ह्रीं परमशांति विधायकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।

परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज की पूजन

(रचयिता : श्रमण विचिन्त्यसागर (संघस्थ)

स्थापना

मन भाव सजाकर ये, गुरु चरणों में आये।
तुम रत्नत्रय धारी, हम रत्नत्रय चाहें।
आओ तिष्ठो गुरुवर, मेरे हृदयासन पर।
करदो हमको पावन, अपने द्वय–पग धरकर।
दिखलाओ हे गुरुवर, अब मुक्ति की राहें। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागरजी महामुनीन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्, अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

जल

भावों का जल भरकर, श्रद्धा भाजन लाये।
तुम जैसी निर्मलता, पाने मन ललचाये।।
मिथ्यात्व असंयम का, अंधियार घना छाया।।
अविनाशी चेतन का, नहिं रूप नजर आया।।
मेंटो ये जनम–मरण, शुभ भाव सजा लाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागरजी महामुनीन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन

रागादिक भावों से, भवताप बढ़ाया है।
स्वाभाविक शीतलता, का घात कराया है।
अर्पित गुरुवर चरणों, ये मलयागिरि चंदन।
मेंटो गुरुवर मेरा, ये भव भव का क्रन्दन।
जिसमें भवताप न हो, वो वैभव मिल जाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागरजी महामुनीन्द्राय संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

अब तलक विभावों की, परिणति में भरमाया।
स्वातम पद पाने की, मन चाहत ले आया।
ये पुंज धवल अर्पण, मम् भाव धवल होवें।
पर्यायों में अपनी, आतम बुद्धि खोवें।
सम्पूर्ण विभावों की, अब संतति नश जाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागरजी महामुनीन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

निष्काम आत्मा का, स्वामी हूँ हे गुरुवर।
अब्रह्म के वश होकर, भटका हूँ मैं दर – दर।
निज परमब्रह्म चेतन, रस का रसपान करूँ।
शैलेषि अवस्था को, पाने मन भाव धरूँ।
ये पुष्प तुम्हें अर्पित, मम् काम विनश जाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागर जी महामुनीन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य

निज चिदानंद–रस का, मैं पूर्ण समुन्दर हूँ।
गुरुवर अनंतबल का, मैं स्वामी अंदर हूँ।
ये क्षुधा की बीमारी, भव – भव भटकाती है।
जितना मैं तृप्त करूँ, ये बढ़ती जाती है।
ये क्षुधा नशाने को, नैवेद्य चरण लाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागरजी महामुनीन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

मोहान्ध बना गुरुवर, पर में ही भरमाया।
निज का पर का गुरुवर!, नहिं भेद समझ पाया।

ये दीप समर्पित है, मोहान्ध नशाने को।
निज की चैतन्यमयी, परिणति प्रगटाने को।
आशीष यही देना, यह मोह विनश जाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागरजी महामुनीन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

जब कर्म उदय आये, मैंने राग और द्वेष किया।
कर्मों ने जो भी दिया, मैंने वैसा भेष लिया।
कर्मों के वश होकर, भव रीति बढ़ाई है।
निष्कर्म निजातम से, न प्रीति लगाई है।
ज्यों अनल में धूप जले, मम कर्म भी जल जायें। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागरजी महामुनीन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

संयोग सजाकर के, सुख मान रहा था मैं।
उनकी नश्वरता से, अंजान रहा था मैं।
भव-भव में कर्मों के, फल में ललचाया हूँ।
निज गुण के फल पाने, चरणों में आया हूँ।
सुख रस से भरा हुआ, शुद्धातम फल पायें। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागरजी महामुनीन्द्राय महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

अर्घावलियों के संग शुभभाव चढ़ाते हैं।
चाहत अनर्घ पद की नित हृदय सजाते हैं।
स्वातम अनर्घ पद बिन भव-भव में दुःख पाया।
सुख पाने पद पाये, पर सुख न कहीं पाया।
अक्षय स्वातम पद का अक्षय सुख मिल जाये।। तुम.....

ॐ ह्रूँ प.पू. भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागर जी महामुनीन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

निस्पृहता की आप हो नूतन परिभाषा।
चर्या गुरुवर आपकी बोधि की भाषा।।
दर्शन ज्ञान चरित्र शुभ तप और वीर्याचार।
पूरी दृढ़ता से करें पालन पंचाचार।।
मन वच तन को गुप्तकर आतम करें विहार।
अशुभ टला, शुभ चाह न, शुद्ध का करें विचार।।
सत्य अहिंसा, शील और अपरिग्रह का हार।
अचौर्य आदी महाव्रतों से चेतन श्रृंगार।।
क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, तप त्याग।
आकिन्चन संयम धरम, ब्रह्मचर्य अनुराग।।
तरुणाई में ही लगी अच्छी संयम राह।
विषय भोग भोगे नहीं न ही किया विवाह।।
विषय भोग संसार से जगा विरक्ति भाव।
गुरु विराग को पा लिया जैसे शीतल छाँव।।
गुरु विराग में कर लिया मात-पिता का दर्श।
छोड़ नाम राकेश तुम, धारण किया विमर्श।।

ॐ ह्रूँ प.पू. भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री 108 विमर्शसागर जी महामुनीन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुरु आशिका

गुरुवर के पावन गुणों की मंगल गीता गाते हैं।
आज यहाँ गुरु पावन गुण हम गाते और सुनाते हैं।।
गुरुवर की इस आशिका से भव के पाप नशाते हैं।
श्री गुरुवर जी की आशिका हम अपने शीष चढ़ाते हैं।।

समुच्चय महार्घ

मैं देव श्री अर्हन्त पूजूँ सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ साधु पूजूँ भाव सों।।
अर्हन्त-भाषित बैन पूजूँ द्वादशांग रची गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरण शिव हेत सब आशा हनी।।
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि दयामय पूजूँ सदा।
जजूँ भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहिं कदा।।
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालय जजूँ।
पन मेरु नन्दीश्वर जिनालय खचर सुर पूजित भजूँ।।
कैलाश श्री सम्मेद श्री गिरनारगिरि पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि और तीरथ सर्वदा।।
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस-वसु जपि होय पति शिवगेह के।।
जल गंधाक्षत पुष्प चरु दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ बहुविधि भक्ति बढ़ाय।।

ॐ ह्रीं भावपूजा-भाववंदना-त्रिकालपूजा-त्रिकालवंदना करै करावै भावना भावै श्री अरिहन्त जी, सिद्धजी, आचार्य जी उपाध्याय जी सर्वसाधुजी पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः। प्रथमानुयोग-करणानुयोग-चरणानुयोग-द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः। दर्शन-विशुद्धयादि-षोडशकारणेभ्यो नमः। उत्तमक्षमादिदशलक्षण धर्मेभ्यो नमः। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्रेभ्यो नमः। जल के विषैं, थल के विषै, आकाश के विषैं, गुफा के विषैं, पहाड़ के विषैं, नगर नगरी विषैं, ऊर्ध्वलोक-मध्यलोक-पाताललोक विषैं विराजमान-कृत्रिम-अकृत्रिम-जिनचैत्यालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः। विदेहक्षेत्रे विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्यो नमः। पाँच भरत, पाँच ऐरावत दशक्षेत्र सम्बन्धी तीस चौबीसी के सात सौ बीस जिनबिम्बेभ्यो नमः। नंदीश्वरद्वीपस्थ द्विपञ्चाशत-जिनचैत्यालयेभ्यो नमः। पञ्चमेरु सम्बन्धी अशीति जिन चैत्यालयेभ्यो नमः। श्रीसम्मेदशिखर-कैलाश-चम्पापुर-पावापुर-गिरनार-सोनागिर-राजगृही-शत्रुञ्जय-तारंगा-अहार जी - कुंडलपुर - नेमावर-मथुरा

चौरासी गजपंथा मांगीतुंगी आदि-सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः। जैनबद्री-मूढ़बद्री-हस्तिनापुर-चन्देरी-पपोरा-अहार जी-अयोध्या-चमत्कार जी, महावीर जी, पदमपुरी, तिजारा जी आदि अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः। ॐ ह्रीं श्री चारणऋद्धिधारी सप्तपरमर्षिभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपावन्तं श्रीवृषभादि-महावीरपर्यन्त-चतुर्विंशति-तीर्थंकर-परमदेवं आद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे...नाम्नि नगरे...मासानामुत्तमे...मासे...शुभपक्षे... तिथौ... वासरे...मुनि-आर्यिकाणां श्रावक-श्राविकानां सकलकर्मक्षयार्थं अनर्घपदप्राप्तये सम्पूर्ण-अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तिपाठ

(शांतिपाठ बोलते समय पुष्प क्षेपण करते रहना चाहिये।)

शांतिनाथ मुख शशि उनहारि, शील गुणव्रत संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजैं।।
पञ्चम चक्रवर्ति पदधारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिन नायक, नमो शान्तिहित शांति विधायक।।
दिव्य विटप पुहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी।।
शान्ति जिनेश शान्ति सुखदाई, जगत्पूज्य पूजौ शिर नाई।
परम शान्ति दीजै हम सबको, पढ़ैं तिन्हें पुनि चार संघ को।।
पूजैं जिन्हें मुकुटहार किरीट लाके,
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।।
सो शांतिनाथ वर वंश जगत्प्रदीप,
मेरे लिए करहिं शान्ति सदा अनूप।।
संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीनकों को यतिनायकों को।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले कीजे सुखी हे जिन ! शान्ति को दे।।
होवै सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो, धर्म-धारी नरेशा।
होवै वर्षा समै पै, तिलभर न रहे, व्याधियों का अन्देशा।।
होवै चोरी न जारी सुसमय वरतै हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारैं जिनवर-वृषको जो सदा सौख्यकारी।।

(निम्न श्लोक पढ़कर चन्दन छोड़ना चाहिए।)

घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज।
शान्ति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज।।
शास्त्रों का हो पठन सुखदा लाभ सत्संगती का,
सद्व्रतों का सुजस कहके, दोष ढाकूँ सभी का।

बोलूँ प्यारे वचन हित के आपका रूप ध्याऊँ।।
तो लों सेऊँ चरण जिनके मोक्ष जो लों न पाऊँ।।
तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहौ प्रभु, जब लौं पाया न मुक्ति पद मैंने।।
अक्षर पद मात्रा से, दूषित जो कुछ कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणा करि पुनि छुड़ाहु भव दुख से।।
हे जगबन्धु जिनेश्वर, पाऊँ तव चरण शरण बलिहारी।
मरण समाधि सु दुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी।।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

(कायोत्सर्गं करोम्यहम्)

विसर्जन

बिन जाने वा जानके, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसाद तैं परमगुरु, सो सब पूरन होय।।
पूजन विधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान।
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करहु भगवान।।
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव।।
आये जो जो देवगण, पूजे भक्ति प्रमान।
ते अब जावहू कृपाकर, अपने-अपने थान।।
श्री जिनवर की आशिका, लीजे, शीश चढ़ाय।
भव-भव के पातक कटें, दुःख दूर हो जाय।।

।। यहाँ पर नौ बार णमोकार मन्त्र जपना चाहिये ।।

पंच परमेष्ठी आरती

(रचयिता –आचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज)

बाजे छम छम छम छमाछम बाजे घुँघरू–बाजे घुँघरू,
हाथों में दीपक लेके आरती करूँ।

पहली आरति अरिहंताणं–2
कर्म घतिया चउ नासाणं–2
चारों गुण पाने गुण वंदना करूँ, हाथों में...।

दूसरी आरति सिरि सिद्धाणं–2
पाने मुक्तिफलं णिव्वाणं–2
आठों गुण पाने गुण वंदना करूँ, हाथों में...।

तीसरी आरति आइरियाणं–2
पंचाचार निपुण समणाणं–2
बोधि गुण पाने गुण वंदना करूँ, हाथों में...।

चौथी आरति उवज्झायाणं–2
पच्चिस गुण धारी अप्पाणं–2
ज्ञान गुण पाने गुण वंदना करूँ, हाथों में...।

पाँचवीं आरति सव्व साहूणं–2
ज्ञान ध्यान तप लीन गुरूणं–2
समता गुण पाने गुण वंदना करूँ, हाथों में...।

बाजे छम छम छम छमाछम बाजे घुँघरू–बाजे घुँघरू,
हाथों में दीपक लेके आरती करूँ।

आरती : श्री पार्श्वनाथ स्वामी की

ॐ जय पारस देवा, स्वामी जय पारस देवा!
सुर नर मुनिजन तुम चरणन की करते नित सेवा।ॐजय...

पौष वदी ग्यारस काशी में, आनंद अतिभारी।स्वामी आनंद...
अश्वसेन वामा माता उर लीनों अवतारी।।ॐजय...

श्यामवरण नवहस्त काय पग उरग लखन सोहैं।स्वामी उरग...
सुरकृत अति अनुपम पट भूषण सबका मन मोहैं।ॐ जय...

जलते देख नाग नागिन को मंत्र नवकार दिया।स्वामी मंत्र...
हरा कमठ का मान, ज्ञान का भानु प्रकाश किया।ॐ जय...

माता पिता तुम स्वामी मेरे, आस करूँ किसकी।स्वामी आस...
तुम बिन दाता और न कोई, शरण गहूँ जिसकी।ॐ जय...

तुम परमातम तुम अध्यातम तुम अंतर्यामी।स्वामी तुम...
स्वर्ग–मोक्ष के दाता तुम हो, त्रिभुवन के स्वामी।ॐ जय...

दीनबंधु दुःखहरण जिनेश्वर, तुम ही हो मेरे।स्वामी तुम...
दो शिवधाम का वास दास, हम द्वार खड़े तेरे।ॐ जय...

विपद–विकार मिटाओ मन का, अर्ज सुनो दाता।स्वामी तुम...
सेवक द्वै–कर जोड़ प्रभु के, चरणों चित लाता।ॐ जय...

श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज की आरती

(रचयिता : श्रमण मुनि विचिन्त्यसागर (संघस्थ)

रत्नों का दीपक लाया, भावों का घी भर लाया, कंचन की थाली गुरुवर आरती,
ओ–गुरुवर हम सब उतारें तेरी आरती,ओ गुरुवर हम सब उतारें तेरी आरती

ग्राम जतारा जन्म लिया है भगवती हैं माता–2
सनतकुमार के लाल तुम्हें हम–2, झुका रहे माथा।। गुरुवर...

पाँच महाव्रत धारी गुरुवर, परीषह के जेता–2
मुक्ति पथ के तुम ही गुरुवर–2, हो सच्चे नेता।। गुरुवर...

बाल ब्रह्मचारी गुरुवर न झूठा जग भाया–2
गुरु 'विराग' के चरणों आकर–2, संयम अपनाया।। गुरुवर...

धरती अम्बर दशों दिशाएँ वंदन करती हैं–2
सारी सृष्टि गुरु चरणों में–2, अभिनंदन करती है।। गुरुवर...

करुणा सागर गुरु हमारे, चरणों बलि–बलि जायें–2
जब तक मुक्ति मिले न हमको–2, भव–भव तुमको पायें।। गुरुवर...

वीतरागता गुरु की चर्या से नित झरती है–2
चरणों में नत होके साधना–2 अभिनंदन करती है।। गुरुवर...

छोटे बाबा सिद्धक्षेत्र, अहार के आप कहाते–2
जो भी श्रद्धा से आता है–2 सबके कष्ट मिटाते।। गुरुवर...

अतिशयकारी बाबा हैं ये, जो भी चरणों आते–2
अपने मन की सभी मुरादें–2 वो पूरी कर जाते।। गुरुवर...

शान्तिनाथ प्रभु के लघुनंदन, सुर–नर सब गुण गाते–2
यक्ष–यक्षिणी संग देवगण–2, पूजा नित्य रचाते।। ओ गुरुवर...

श्री पार्श्वनाथ चालीसा (अहिच्छत्र)

(दोहा)

शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करूँ प्रणाम।
उपाध्याय आचार्य का ले सुखकारी नाम।।
सर्व साधु और सरस्वती, जिन–मंदिर सुखकार।
अहिच्छत्र और पार्श्व को, मन मंदिर में धार।।

(चौपाई छन्द)

पार्श्वनाथ जगत्–हितकारी, हो स्वामी तुम व्रत के धारी।
सुर–नर–असुर करें तुम सेवा, तुम ही सब देवन के देवा।।1।।

तुमसे करम–शत्रु भी हारा, तुम कीना जग का निस्तारा।
अश्वसैन के राजदुलारे, वामा की आँखों के तारे।।2।।

काशी जी के स्वामी कहाये, सारी परजा मौज उड़ाये।
इक दिन सब मित्रों को लेके, सैर करन को वन में पहुँचे।।3।।

हाथी पर कसकर अम्बारी, इक जंगल में गई सवारी।
एक तपस्वी देख वहाँ पर, उससे बोले वचन सुनाकर।।4।।

तपसी! तुम क्यों पाप कमाते, इक लक्कड़ में जीव जलाते।
तपसी तभी कुदाल उठाया, उस लक्कड़ को चीर गिराया।।5।।

निकले नाग–नागनी कारे, मरने के थे निकट बिचारे।
रहम प्रभु के दिल में आया, तभी मंत्र–नवकार सुनाया।।6।।

मरकर वो पाताल सिधाये, पद्मावती–धरणेन्द्र कहाये।
तपसी मरकर देव कहाया, नाम 'कमठ' ग्रन्थों में आया।।7।।

एक समय श्री पारस स्वामी, राज छोड़कर वन की ठानी।
तप करते थे ध्यान लगाये, इक दिन 'कमठ' वहाँ पर आये।।8।।

फौरन ही प्रभु को पहिचाना, बदला लेना दिल में ठाना।
बहुत अधिक बारिश बरसाई, बादल गरजे बिजली गिराई।।9।।

बहुत अधिक पत्थर बरसाये, स्वामी तन को नहीं हिलाये।
पद्मावती–धरणेन्द्र भी आए, प्रभु की सेवा में चित लाए।।10।।
धरणेन्द्र ने फन फैलाया, प्रभु के सिर पर छत्र बनाया।
पद्मावती ने फन फैलाया, उस पर स्वामी को बैठाया।।11।।
कर्मनाश प्रभु ज्ञान उपाया, समोसरण देवेन्द्र रचाया।
यही जगह 'अहिच्छत्र' कहाये, पात्रकेशरी जहाँ पर आये।।12।।
शिष्य पाँच सौ संग विद्वाना, जिनको जाने सकल जहाना।
पार्श्वनाथ का दर्शन पाया, सबने जैन–धरम अपनाया।।13।।
'अहिच्छत्र' श्री सुन्दर नगरी, जहाँ सुखी थी परजा सगरी।
राजा श्री वसुपाल कहाये, वो इक जिन–मंदिर बनवाये।।14।।
प्रतिमा पर पॉलिश करवाया, फौरन इक मिस्त्री बुलवाया।
वह मिस्तरी माँस खाता था, इससे पॉलिश गिर जाता था।।15।।
मुनि ने उसे उपाय बताया, पारस–दर्शन–व्रत दिलवाया।
मिस्त्री ने व्रत–पालन कीना, फौरन ही रंग चढ़ा नवीना।।16।।
गदर सतावन का किस्सा है, इक माली को यों लिक्खा है।
वह माली प्रतिमा को लेकर, झट छुप गया कुएँ के अंदर।।17।।
उस पानी का अतिशय–भारी, दूर होय सारी बीमारी।
जो अहिच्छत्र हृदय से ध्यावे, सो नर उत्तम–पदवी पावे।।18।।
पुत्र–संपदा की बढ़ती हो, पापों की इकदम घटती हो।
है तहसील आँवला भारी, स्टेशन पर मिले सवारी।।19।।
रामनगर इक ग्राम बराबर, जिसको जाने सब नारी–नर।
चालीसे को 'चन्द्र' बनाये, हाथ जोड़कर शीश नवाये।।20।।

(सोरठा)

नित चालीसहिं बार, पाठ करे चालीस दिन।
खेय सुगंध अपार, अहिच्छत्र में आय के।।
होय कुबेर–समान, जन्म–दरिद्री होय जो।
जिसके नहिं संतान, नाम–वंश जग में चले।।

श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर चालीसा

(रचयिता : श्रमण मुनि विचिन्त्यसागर (संघस्थ)

दोहा

गुरु विरागसागर चरण, वंदन बारम्बार।
सच्ची श्रद्धा भक्ति से, गुरु विमर्श उर धार।।
शब्दों की सुमनावली, चरणों गुरु गुणगान।
चालीसा में कर रहे, गुरु 'विमर्श' यशगान।।

चौपाई

छत्तिस गुण से मंडित गुरुवर, विमर्शसागर सूरी यतिवर।
परम वीतरागी जिनमुद्रा, दर्शन से टूटे चिरनिद्रा।।
मार्ग शीर्ष वदि पंचम आई, गुरुवार का दिन सुखदाई।
पन्द्रह ग्यारह सन् तेहत्तर, जन्मे गुरु बुन्देली भू पर।।
नगर जतारा बजी बधाई, लखकर माँ भगवति मुस्काई।
पुत्र रतन तुमसा जब पाया, पिता सनत का मन हर्षाया।।
गौर वर्ण मूरत मनहारी, लगा मुक्ति वधु हुई तुम्हारी।
लेकिन जब तरुणाई आई, राग रंग परिणति मन भाई।।
गुरु विराग का संघ मनोहर, हो जैसे अध्यात्म धरोहर।
नगर जतारा दर्शन पाया, मन ही मन वैराग्य जगाया।।
फरवरि सत्ताइस पिचानवे, सिद्धक्षेत्र आहार जानवे।
शांतिनाथ की मूरत प्यारी, गुरुवर बने बाल ब्रह्मचारी।।
तेइस फरवरि छियानिव आया, श्री गुरु से ऐलक पद पाया।
पूर्व नाम राकेश तुम्हारा, गूँजा अब 'विमर्श' जयकारा।।
गुरु विराग दें शिक्षा–दीक्षा, पूर्व कर्म ले रहे परीक्षा।
अंतराय परीषह बन आये, 'अंतराय सागर' कहलाये।।
चतुर्मास सत्तानिव आया, भिण्ड नगर में उत्सव छाया।
'जीवन है पानी की बूँद' जब, कालजयी रचना प्रगटी तब।।
गुरुवर महाकवि कहलाये, महाकाव्य पहिचान बताये।
कमर लँगोटी लगती भारी, करली जिनदीक्षा तैयारी।।

पौषबदी एकादश आई, सोमवार मुनि दीक्षा पाई।
चौदह बारह सन् अठानवे, क्षेत्र बरासो भिण्ड जानवे।।
अध्यातम की ज्योति जलाई, समयसार की महिमा गाई।
वाणी सुन सब बने मुमुक्षु, करें प्रार्थना बनने भिक्षु।।
गुरु विराग ने क्षमता जानी, 'सूरीपद' देने की ठानी।
दो हज्जार पाँच सन् आया, गुरु विराग 'सूरीपद' गाया।।
विद्वत् जन आचार्य पुकारें, निस्पृह गुरुवर न स्वीकारें।
मन में था संकल्प निराला, गुरु बिन पद नहीं लेने वाला।।
वह भी शीघ्र घड़ी शुभ आई, गुरु की आज्ञा गुरु ने पाई।
राजस्थान धरा अति पावन, नगर बाँसवाड़ा का आँगन।।
बारह-बारह दो हजार दस, रविवार दिन भक्त कई सहस।
मार्गशीर्ष सुदि सप्तमि उत्सव, सूरीपद का महामहोत्सव।।
गुरु विराग ने 'सूरि' बनाया, जन-जन ने जयकार लगाया।
गुरुवर जिस पथ राह गुजरते, जिनशासन के मेले भरते।।
'योगसार' प्राभृत है नीका, 'विमर्शोदया' प्राकृत टीका।
लिख गुरु ने इतिहास रचाया, जिनश्रुत का सम्मान बढ़ाया।।
क्षेत्र अहार महा सुखदाई, शान्तिभक्ति गुरु सिद्धि पाई।
यक्षों ने तब चँवर ढुराये, गुरुवर के जयकार लगाये।।
संकट मोचन तारणहारे, गुरु मंत्र के अतिशय न्यारे।
जो भी श्रद्धा से ध्याता है, हर दुख संकट खो जाता है।।
आगम अध्यातम का संगम, गुरुचर्या में दिखता हरदम।
शिष्यों को सन्मार्ग दिखाते, अनुशासन का पाठ सिखाते।।
शांत, सहज, अति सरल स्वभावी, हों गुरुवर तीर्थंकर भावी।
जब तक हैं ये चाँद सितारे, चिर आयुष हों गुरु हमारे।।

दोहा

गुरु चालीसा भाव से, पढ़े सुनें चित लाय।
परम यशस्वी हो यहाँ, परभव में यश पाय।।
गुरु भक्ति गुरु प्रार्थना, निश्रेयश सुखदाय।
जनम मरण को नाशकर, नर 'विचिन्त्य' फल पाय।।

*****

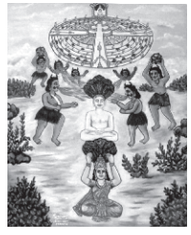

बैर पर क्षमा की विजय

(तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन पर आधारित नाटिका)

–बा.ब्र. विशु दीदी
(संघस्थ–भावलिंगी संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी गुरुदेव)

(दृश्य–महाराजा अरविन्द का दरबार)

(सिंहासन खाली है)

दरबारी – जैन धर्म के परम भक्त, महाराज अरविंद की जय हो, महाराज अरविंद की जय हो, महाराज अरविंद की जय हो

''महाराजा अरविंद राजदरबार में पधार रहे हैं सावधान''

(सभी दरबारीजन राजदरबार में खड़े हो जाते हैं, राजा अरविंद सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं)

राजा अरविंद – भो मंत्रीवर! राज्य व्यवस्था के क्या समाचार हैं? हमें अवगत करायें।

मंत्री विश्वभूति – प्रणाम महाराज! आपके प्रताप से राज्य की व्यवस्था भली प्रकार से चल रही है। प्रजा में सर्वत्र सुख शांति एवं प्रसन्नता का वातावरण छाया हुआ है। किन्तु...

(इतना कहकर चुप्पी साधना)

राजा अरविंद – भो मंत्री! ''किन्तु'' किन्तु क्या? आप बोलते-बोलते चुप कैसे हो गये? ऐसा लगता है कि आप कुछ और भी कहना चाहते थे।

आप निस्संकोच होकर बोलिये। आपके लिये आज्ञा है।

मंत्री विश्वभूति – हे महाराज! आप जैसे श्रेष्ठ कुशल शासक की सेवा एवं राज्य की सेवा कर मेरा जीवन धन्य हो गया। हमारे परिवार का जीवन निर्वाह भी प्रसन्नतापूर्वक हो रहा है। नगर में परम वीतरागी संतों का सानिध्य जीवन की असारता का बोध कराकर सच्चे सुख का मार्ग प्रशस्त करता रहता है।

राजा अरविन्द – हमें यह सुनकर अति प्रसन्नता हुई सचमुच साधु संगति का अनुभव अपूर्व सुख देता है।

मंत्री विश्वभूति– हे महाराज! राज्य सेवा करते–करते अब हमारा जीवन रूपी सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा है। इसलिये हमने भी अब जिनदीक्षा लेकर आत्म कल्याण करने का विचार किया है। आप हमें अनुमति प्रदान करें।

राजा अरविंद – अरे! अरे! मंत्रीवर यह आप क्या कह रहे हैं?आपके बाद इस मंत्री पद को कौन सुशोभित करेगा? आपके जैसा स्वामीभक्त, कर्तव्यनिष्ठ, बुद्धिमान इस पद के योग्य कौन होगा?

मंत्री विश्वभूति– हे राजन्! हमारा छोटा पुत्र मरुभूति इस पद के योग्य है। आप उसकी योग्यताओं से भली भाँति परिचित हैं, यदि आप चाहें तो यह मंत्री पद का भार उसे प्रदान कर सकते हैं।

राजा अरविंद– आपकी सलाह अति उत्तम है।

(पर्दा गिरता है)

संचालन – इस प्रकार मंत्री विश्वभूति राजा अरविन्द एवं परिवार से अनुमति लेकर एक निर्ग्रंथ आचार्य के पादमूल में निर्ग्रंथ मुनि हो गया।

इधर राजा अरविंद ने मरुभूति को राज्यसभा में आमंत्रित कर प्रधानमंत्री का पद सौंप दिया। मरुभूति भी अपने पिता की तरह प्रधानमंत्री के दायित्वों का विधिवत् निर्वाह करने लगा।

एक दिन राजा अरविंद का आदेश पाकर मंत्री मरुभूति राज्य के कार्यवश बाहर गया हुआ था। तभी उसका बड़ा भाई ''कमठ'' जो कि दुष्ट एवं दुराचारी प्रकृति का था। उसने अपने छोटे भाई मरुभूति की पत्नी से कुचेष्टा करने के कारण राजा अरविंद से राज्य निर्वासन प्राप्त किया। अपमान की ज्वाला में जलता हुआ कमठ एक पर्वत पर वजनदार शिला को दोनों हाथों में उठाकर खोटा तप करने लगा।

इधर मरुभूति ने जब यह समाचार सुना तो वह सीधा कमठ के पास जाकर वापिस चलने का निवेदन करने लगा।

(दृश्य–कमठ शिला लिये खड़ा है मरुभूति निवेदन करता हुआ)

मरुभूति – भईया! सभी अपराध क्षमा करो। आप वापिस घर चलो।

कमठ – (अत्यधिक क्रोधित होते हुये) दुष्ट! दुष्ट! दुष्ट! तेरी वजह से ही मेरी यह दुर्दशा हुई है। (मरुभूति के ऊपर शिला पटक देता है।)

शिला के गिरते ही मरुभूति के प्राण पखेरु उड़ गये। दुष्टात्मा कमठ अट्टाहास (हा–हा–हा) करने लगता है। (अन्य तापसी उसे धक्के देकर वहाँ से निकाल देते है)

(पर्दा गिरता है)

(दूसरा– भव)

संचालन– मरुभूति दुर्ध्यान से मरण प्राप्त कर सल्लिकी वन में वज्रघोष नाम का हाथी हुआ, कमठ की स्त्री वारुणा उसी वन में हथिनी हुई जो वज्रघोष हाथी के साथ तरह–तरह की क्रीड़ा करती थी।

इधर राजा अरविन्द मरुभूति के मरण का समाचार पाकर संसार के स्वभाव का चिंतन करते हुये वैराग्य को प्राप्त हुये और मुनि दीक्षा धारण कर ली।

एक दिन मुनिराज अरविंद अनेक मुनियों के साथ सम्मेद शिखर की वंदना के लिये चलते–चलते उसी सल्लिकी वन में पहुँचे। और एक शिला पर विराजमान हो सामायिक करने लगे। तभी वहाँ से वज्रघोष हाथी गुजरा और मुनिराज को देखकर उसे जाति स्मरण हुआ।

इधर मुनिराज ने अवधिज्ञान से जानकर मरुभूति के जीव को सम्बोधित किया।

(दृश्य–वज्रघोष हाथी व मुनिराज)

मुनि अरविंद – भो व्रजघोष! तुम मरुभूति के जीव हो। अपने भाई कमठ के द्वारा मृत्यु प्राप्तकर दुर्ध्यान के कारण हाथी हुये हो, अब सम्यग्दर्शन के साथ अणुव्रत धारण करो।

संचालन – इस तरह वज्रघोष मुनिराज से अणुव्रत ग्रहण कर श्रावक व्रत पालने लगा।

(दृश्य सीन–अणुव्रतधारी हाथी)

(एक दिन वज्रघोष पानी पीने झरने के निकट जा रहा हथा। तभी दल–दल में फँस गया।)

संचालन – कमठ मरकर इसी झरने के किनारे कुक्कट जाति का सर्प हुआ था उसने पूर्व भव के बैर के कारण हाथी को डस लिया और वज्रघोष हाथी व्रतों के प्रभाव से 12वें स्वर्ग में 16 सागर की आयुवाला देव हुआ।

संचालन – इस प्रकार मरुभूति का जीव आनत स्वर्ग में 20 सागर की आयु को भोगकर बनारस नगरी में पिता अश्वसेन और माता वामा के

पारसनाथ के भव	कमठ के भव
बारहवें स्वर्ग का देव	5वें नरक का नारकी
अग्निवेग नाम का विद्याधर (अजगर के द्वारा अग्निवेग मुनिराज को निगलना	अजगर
सोलहवें स्वर्ग में देव	6वें नरक का नारकी
वज्रनाभि चक्रवर्ती (वज्रनाभि मुनिराज पर कुरंग भील द्वारा घोर उपसर्ग)	कुरंग भील
मध्यम ग्रेवेयक में अहमिन्द्र	सातवें नरक में नारकी
महामण्डलेश्वर आनंद राजा (तीर्थंकर प्रकृति का बंध मुनिदशा में सिंह द्वारा उपसर्ग)	क्षीरवन में सिंह
आनत स्वर्ग में इन्द्र	नरक एवं अनेक कुयोनियों में भ्रमण
पारसनाथ	महिपाल राजा

गृह में जन्म लेने के सम्मुख हुआ। रात्रि के पिछले पहर में महारानी वामा देवी ने 16 स्वप्न देखे। प्रात:काल स्नान आदि क्रियाओं से निवृत्त होकर प्रसन्नचित हो वह अपने स्वामी महाराज अश्वसेन के निकट पहुँची और स्वप्नों का फल ज्ञात किया। राजा अश्वसेन ने प्रमुदित होकर कहा, आज तुम्हारे गर्भ में 23वें तीर्थंकर ने अवतार लिया है। स्वामी के प्रिय वचन सुनकर वामादेवी को अत्यधिक हर्ष हुआ। इसी समय देवों ने आकर राज दम्पति का खूब सत्कार किया एवं स्वर्ग से साथ में लाये हुये वस्त्र आभूषण भेंट किये।

9 माह पश्चात् पौषवदी एकादशी के दिन महारानी वामा ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। उसी समय सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। सौधर्म इन्द्र ने तीर्थेश का जन्म हुआ है ऐसा जानकर हर्ष उल्लास के साथ सुमेरु पर्वत पर जन्माभिषेक किया। एवं उनका नाम पार्श्वकुमार रखा। तत्पश्चात् इन्द्र ने बालक पार्श्व को माता के लिये सौंप दिया एवं सभी देवगणों ने जन्मोत्सव मनाया।

(दृश्य – जन्मोत्सव की बधाईयाँ)

संचालन – समय बीतता गया, और भगवान पारसनाथ ने धीरे–धीरे बाल्यावस्था व्यतीत कर कुमारावस्था में प्रवेश किया। 16 वर्ष की अवस्था में पारसकुमार एक दिन अपने इष्टमित्रों के साथ वन में क्रीड़ा करने के लिये जाते हैं।

(दृश्य – माता वामा और पिता अश्वसेन वार्ता करते हुये तभी पारस कुमार का प्रवेश)

माता–पिता– आओ पुत्र आओ। अभी हम लोग तुम्हारे विषय में ही वार्ता कर रहे थे।

पार्श्वकुमार– पिता श्री वो...

पिता अश्वसेन– हाँ पुत्र बोलो, क्या कहना चाहते हो ?

पार्श्वकुमार– वो में आपसे...।

माता वामा– हाँ ! पुत्र नि:संकोच कहो।

(पीछे से मित्रगण इशारा करते हुये)

माता वामादेवी– अच्छा। मैं समझ गयी, लगता है मित्रों के साथ कहीं घूमने की तैयारी हो रही है।

(सभी मित्रों का एक साथ उपस्थित होना)

पार्श्वकुमार– हाँ माँ! हम यहाँ अनुमति लेने ही आये थे।

पिता अवश्वसेन– पुत्र हमारी आज्ञा है, (पार्श्वकुमार अपने मित्रों के साथ आनंदित होते हुये वन क्रीड़ा को चले गये।)

(दृश्य – वन क्रीड़ा करते हुए)

संचालन– पारस कुमार जब इष्ट मित्रों के साथ वनक्रीड़ा कर लौट रहे थे तभी मार्ग के किनारे पर पंचाग्नि तप करते साधु को देखा।

भव–भव से जिसका पार्श्वकुमार के जीव से बैर था। यह साधु उसी कमठ का जीव था, वर्तमान पर्याय में महीपाल राजा हुआ। जो कुमार पार्श्व का नाना था राजा अपनी पटरानी की मृत्यु से अत्यन्त दुखित होकर पंचाग्नि तप करने लगा।

(दृश्य–नाग नागिन की रक्षा)

(पंचाग्नि तप करते हुये अग्नि के पास बैठा हुआ तापस साधु महीपाल)

संचालन– पार्श्व कुमार नमस्कार किये बिना उसके सामने आकर खड़े हो गये।

तापस– मुझे बड़े–बड़े राजे–महाराजे तक नमस्कार करते हैं और ये बालक कितना अभिमानी है जबकि मैं तापस भी हूँ और इसका नाना भी हूँ। खैर...

तापस– अरे! अरे! ये अग्नि बुझने वाली है मैं इसे शीघ्र प्रदीप्त करता हूँ।

पार्श्वकुमार– भो तापस! तुम यह हिंसक खोटा तप क्यों कर रहे हो? शायद तुम जानते नहीं जिस लकड़ी को तुम प्रदीप्त कर रहे हो, उसमें एक नाग–नागिनी का जोड़ा जल रहा है।

तापस– भो अभिमानी बालक! तुझे अपने ज्ञान पर बड़ा अभिमान है मैं इस

लक्कड़ को अभी चीरता हूँ और तेरे विशिष्ट ज्ञान के अभिमान को चूर–चूर करता हूँ।

(तापस आग बबूला होते हुये कुल्हाड़ी से लकड़ी को चीरता है तभी तड़पता हुआ नाग–नागिन का जोड़ा दिखाई देता है।

संचालन– (करुणा से द्रवित होते हुये) उस नाग युगल को तुरंत णमोकार मंत्र– **णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं** सुनाते हैं। नाग युगल तीर्थंकर बालक पार्श्वकुमार के मुख से णमोकार मंत्र का ध्यान करता हुआ शांत परिणामी हो मृत्यु को प्राप्त कर महाविभूति का धारक धरणेन्द्र पद्मावती हुआ।

महीपाल तापस अपने इस महान तिरस्कार से बहुत दुखी हुआ और आर्तध्यान से मरकर कालसंवर नामक ज्योतिष देव हुआ।

संचालन– समय बीतता गया। एक दिन पार्श्वकुमार के निकट अयोध्या नगर के राजा जयसेन ने उत्तमोतम भेंट लेकर अपने दूत को भेजा। पार्श्वकुमार ने दूत से अयोध्या का समाचार पूछा, दूत ने अयोध्या में जन्मे आदिनाथ तीर्थंकर का वर्णन किया। दूत से विगत तीर्थंकरों का वैभव सुनकर पार्श्वकुमार सोचने लगे। अहो! मैं भी भावी तीर्थंकर हूँ। मैंने आयु के 30 वर्ष व्यर्थ ही गवाँ दिये।

इस प्रकार पार्श्वकुमार चिन्तवन करते हुये वैराग्य को प्राप्त हुये।

(दृश्य – महामुनि पार्श्वनाथ तपस्या में लीन हैं)

(इतने में कालसंवर देव का आगमन)

संवरदेव– ओह! ये कौन है? (अपना अवधिज्ञान लगाता है।)

इसी ने मेरा अनादर किया था। और यह दुष्ट आज भी अपनी दुष्टता नहीं छोड़ रहा है। इसी ने मेरा विमान रोका। अब ले मैं तुझे मजा चखाता हूँ।

(संवर देव उपसर्ग करता हुआ – हा हा हा वर्षा ओले–पत्थर आदि)

(महामुनि पार्श्वनाथ आत्मध्यान में लीन)

इस तरह सात दिन तक महाभयंकर उपसर्ग हुआ तभी धरणेन्द्र का

आसन कम्पायमान होता है। महामुनि पार्श्वनाथ पर उपसर्ग हुआ जान धरणेन्द्र पद्मावती तुरंत प्रभु के समक्ष उपस्थित होते हैं और उपसर्ग दूर करते हैं।

तभी महामुनि पार्श्व को केवलज्ञान प्राप्त होता है संवरदेव उनके चरणों में नतमस्तक हो अपना बैरभाव छोड़ देता है और सम्यक्दर्शन प्राप्त करता है।

संचालन– चारों निकाय के देव भगवान के केवलज्ञान की पूजा महोत्सव रचाते हैं।

(तेरी कृपा की क्या बात है–2)

इस प्रकार भगवान पार्श्वनाथ केवली अवस्था में विहार करते रहे और धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते–करते श्री सम्मेदशिखर जी पहुँचे। जहाँ आज श्रावणशुक्ला सप्तमी के दिन प्रभु ने महानिर्वाण प्राप्त किया।

*****